


SHREE GOPAL

कि जिस प्रकार कोई दूधको मथ कर उसमें से घृतरूपी दुग्ध के सार को निकाल कर बाहर रख देता है उसी प्रकार श्रीकृष्णभगवानने वेदरूपी दुग्ध को मथकर उसमें से घृतरूपी गीताको अधर्म का नाश करने के लिये और मनुष्योंको मोक्षपद लाभ कराने के लिये निकाला है। अस्तु, जिस भाँति मैने वेदव्यासजी से सुना है उसे उसी प्रकार

गीता भाषा ४

आपको सुनाता हूँ सो हे शौनक जी ! श्री कृष्णचन्द्रजीका हृदयमें ध्यान करके तथा उनको हृदयमें नमस्कार करके ध्यानपूर्वक सुनो । जिस प्रकार पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा स्वर्ण (सोना) बन जाता है और जिस प्रकार अग्नि में तपाने से सोना, कुन्दन बन जाता है तथा खराद पर चढ़ाने से हीरे पर आब आ जाती है, उसी प्रकार गीता को

मन बचन और कर्मसे स्पर्श करने वाला
उसके बताये मार्ग पर चलने वाला पुरुष
पापी से पुण्यात्मा, मूर्ख से विद्वान्, विद्वान्
से योगी और योगीसे मोक्षपद को पाता है।
जिस प्रकार ग्वाला सब रोगों के नाश करने
वाले, शरीर के बल और सौन्दर्य को बढ़ाने
वाले, बुद्धिवर्द्धक दूधको दूसरोंकेलिये दुहता
है। उसी प्रकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह ५

भय, शोक, अहंकार इन मानसिक शत्रुओं को नष्ट करने के लिये आत्मिक बल को देने वाली, इस लोक और परलोक का ज्ञान कराने वाली, जीव, ब्रह्म और माया के भेद को दर्शाने वाली, अज्ञानी को ज्ञान का मार्ग दिखाने वाली, अकर्मण्यको कर्मवीर बनाने वाली, उपनिषद् तथा शास्त्रों की साररू-पिणी गीताको गोपालनन्दन ने आत्मिक

शारीरिक और सामाजिक बलके लिये दू-
हा। जो मनुष्य मन वचन और कर्म से अर्थ
सहित इसगीताको अपनेमें धारताहै अर्थात्
उसके अनुकूल कर्म करता है वह चाहे
कितना भी पापी से पापी, निर्बल से निर्बल
दरिद्र से दरिद्र और दुःखी से दुःखी क्यों
न हो, वह भी अवश्य ही इसके बल से
पुण्यवान्; बलवान्, धनवान् और पुत्रवान्

होकर सुखी होता है। जो मनुष्य प्रतिदिन नियम से आप गीताको पढ़ता है और दूसरो को उसका अर्थ सुनाता है, वे श्रद्धा-पूर्वक सुनने और सुनाने वाले दोनों भक्त चारों पदार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम; मोक्ष को निश्चय प्राप्त होते हैं। हे शौनकजी ! जो मनुष्य सत्यनिष्ठा से अर्थात् जैसा मन में हो वैसा ही वचन से कहे और जैसा कहे

वैसाही व्यवहार में भी गीता पर आचरण करता है उसके आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों दुःखों का नाश जड़-मूल से हो जाता है। जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, अहङ्कार आदि से मनमें दुःख पैदा होता है जिसका अनुभव आत्मा करता है वह आध्यात्मिक दुःख कहाता है और जो वर्षा के न होने से, वर्षा

के अधिक हो जाने से असमय वर्षा के होने से, अग्नि के लग जाने से, गर्मी विशेष पड़ने से, आँधी के चलने से, पृथ्वी में भूकम्प के आने से, विद्युत (विजली) के गिरने से, कोहरे या बर्फ के अधिक पड़ जानेसे क्लेश होता है और जो प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त धनञ्जय इन दश प्रकार की शरीर में रहने

वाली वायुवों के कुपित होने से शरीर में व्याधियाँ उत्पन्न होने से, कष्ट होता है। मरण कालमें जो वात, पित्त, कफ आदि के सताने से इत्यादि जितने भी देवताओं के सम्बन्धसे दुःख उत्पन्न होते हैं वे सब आधि-दैविक दुःख कहाते हैं। पानी में डूबने से, अग्नि के द्वारा जलने से, मकान, पहाड़ वृक्ष आदि पर से गिरने से, सर्प बिच्छु हिंसक

जन्तुओं द्वारा सताये जानेसे, लाठीतलवार आदि शस्त्रास्त्र द्वारा चोट खा जानेसे, कठोर या कुत्सित [गाली] आदि वचन सुनने से, भूतों अर्थात् प्राणियों द्वारा जो दुःख प्राप्त होता है वह आधिभौतिक दुःख कहलाता है। हे शौनकजी! जो प्राणि अक्षय सुख अर्थात परमानन्द को प्राप्त करना चाहे वह खाते-पीते उठते-बैठते सोते जागते

आते-जाते देखते-सुनते, गीता ही की चर्चा किया करे अर्थात् अपने को गीतामय बना दे तो वह नर इस गीतारूपिणी तरणी [नाव] पर चढ़ा हुआ इस असार संसाररूपी समुद्र को तर कर उस आनन्द कन्द भगवान की गोद में जा बैठता है, यह गीता ही का माहात्म्य है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी ने स्वयं गीता में अर्जुन के प्रति कहा कि हे अर्जुन!

जिस स्थान पर गीता का विचार होता है
वहाँ मैं अवश्य निवास करता हूँ। हे पार्थ !
गीता मेरा हृदय है और इस पुनीत गीताके-
गीता १ गंगा २ गायत्री ३ सीता ४ सत्या
५ सरस्वती ६ ब्रह्मविद्या ७ ब्रह्मवल्ली ८
त्रिसन्ध्या ९ मुक्तगेहनी १० अर्धमात्रा ११
चिदानन्दा १२ भवघ्नी १३ भयनाशिनी
१४ वेदत्रयी १५ परा १६ अनन्ता १७

तत्त्वज्ञानमञ्जरी १८ इन अठारहों नामों का जो मनुष्य जप करता है वह मोक्षको प्राप्त होता है। यदि कोई मनुष्य स्वयं न पढ़ सके तो दूसरे से अवश्य सुनकर उस पर तन मन और धन से आचरण करे। यथाशक्ति प्रतिदिन एक एक श्लोक के एक एक पद के अर्थको एकाग्रचित्त हो कर विचारा करे। ऐसा करने वाले पुरुष

को अपूर्व ज्ञानका लाभ होता है। इस पुनीत गीताके अभ्यास करने का अधिकार हर एक वर्णके नर नारियों को है। इस भाँति गीता का माहात्म्य श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अर्जुनके लिये समझाया था सो हे शौनक! वही मैंने सुनाया है।

इति श्रीवाराहपुराणे सूत शौनक संवादे श्रीकृष्णप्रोक्त श्रीमद्भगवद्गीतायाः माहात्म्यं सम्पूर्णम्।

श्री मद्भगवद्गीता के आरम्भ का कारण।



ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र के जन्मान्ध होने के कारण वैमात्र अनुज भ्राता पाण्डु ही हस्तिनापुरीय राज्यसिंहासन के अधिकारी हुए। महाराज पाण्डु की दो स्त्रियें अर्थात् कुन्ती और माद्री थीं। महारानी कुन्ती के धर्मराज-युधिष्ठिर अर्जुन और

भीम ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए और रानी माद्री के नकुल तथा सहदेव दो पुत्र हुए। इन पाँचों में परस्पर बड़ा ही प्रेम था। धृतराष्ट्र की धर्मपत्नी गान्धारी के दुर्यो- धनादि सौ पुत्र उत्पन्न हुए। इन एक सौ पाँच पुत्रों को गुरु के पास पढ़ने को बैठाया। गुरुजी ने इन्हें शस्त्रास्त्र विद्या बड़े प्रेम से पढ़ाई। पढ़कर जब घर आये उस समय

पाण्डु महाराज की मृत्यु के कारण राज्य का कार्य महाराज धृतराष्ट्र ही देखते थे। अतः उन्होंने अपने छोटे भाई पाण्डु के धरोहररूप राज्य को उसके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को सुयोग्य जानकर देना चाहा। परन्तु यह विधाता को इष्ट नहीं था। अतः जब दुर्योधन को यह समाचार मिला तो उसने अनर्थ मचा डाला। वह अपने पिता

धृतराष्ट्र के पास आकर बोला-क्या आप युधिष्ठिर को राज्य देकर हमें उसका दास बनाना चाहते हैं? धृतराष्ट्र ने उसे समझाया बेटा! तुम्हें युवराज बनाकर मैं अन्याय कैसे करूँ? यह राज उनके पिता का ही है इसलिये उसके उत्तराधिकारी भी वे ही हैं। इस बातको सुनकर दुर्योधन शान्त नहीं हुआ प्रत्युत उसके अनर्थ की मात्रा और

भी अधिक बढ़ गई। किसी कवि ने ठीक का०
कहा है (यौवनं धन सम्पति, प्रभुत्त्वमावि
वेकिता । एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र
चतुष्टयम् ।) प्रथम तो यौवन स्वयं ही
अनर्थ का मूल है और उसपर धनकी सहा-
यता तो अनर्थ पर अनर्थ उत्पन्न करने
वाली होती है। इसके साथ २ यदि हजारों
मनुष्यों पर प्रभुत्व [अधिकार] भी मिल २१

जाय तब फिर क्या कहना फिर तो रक्षा किये पर भी बचना दुर्लभ है। इतना होनेपर भी यदि अविवेकिता (मूर्खता) हो तो ठीक "नीम चढ़े करेला" वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो जाती है। दुर्योधन में इन में से किसी की भी न्यूनता नहीं थी, इसलिये उसने अनर्थ-भरी भाषा में कहा पिता जी, मैं जीते जी तो उन्हें राज्य लेने न दूँगा। हाँ!

मेरे मरे बाद चाहे कोई राज्य को भोगे। यदि आप इसमें लौटफेर करेंगे तो मेरे मरे का मुँह देखेंगे। धृतराष्ट्र यद्यपि अन्धे थे परन्तु तो भी ऐसा बचन सुनकर उनके हृदय में मोह उत्पन्न हो गया और साथ ही "अन्धे को दूर की सूझी" वाली जनश्रुति चरितार्थ हो गयी। उन्होंने कहा बेटा! अच्छा, यदि उनको एक ऐसा जंगली राज्य दे दें, जहाँ

का०

न तो अच्छा अन्न ही उत्पन्न होता हैं और
न किसी प्रकार सुख ही है। वहाँ की प्रजा
राज्य-कर देने में भी बड़ी कृपण [कञ्जूस]
है 'एक पन्थ दो काज' भी हो जायँगे
अर्थात हस्तिनापुर राज्य की प्रजा भी
मुझे अन्यायी नहीं कहेगी। और तुम्हारी
भी इच्छा पूर्ण हो जायगी। निदान एक
बड़ा ही सुन्दर भवन इनके रहने के लिये

उस वन में बनाया गया परन्तु वह जैसा देखने में सुन्दर प्रतीत होता था यथार्थ में वैसा था नहीं अर्थात् [विष कुम्भं पयो मुखम्] "घड़े में विष भरा हो और मुख पर अमृत भरा हो उसकी दीवारें बाहर से बड़ी मनोहर थीं परन्तु उनके अन्दर एक ऐसा उद्दीप्त पदार्थ भरा हुआ था कि आग दिखाते ही भभक उठे। एक दिन ऐसा ही हुआ कि

अमावस्या की रात को एकाएकी आग भभक उठी और भवन जलकर राख हो गया। बहुत दिनों तक जब उनका कोई समाचार न मिला तो दुर्योधनादि ने समझा कि हमारे शत्रु मर गये, परन्तु उनकी यह धारणा निर्मूल थी क्योंकि 'जाको राखे साइयाँ, मार सकै नहिं कोय, बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय' जिस समय

आग भभक रही थी उसी समय युधिष्ठिर जी को स्मरण आया कि हस्तिनापुर से चलते समय विदुर जी ने कहा था कि-- 'अमावस्या की रात स्मरण रखना' उन्हों-ने आते ही उस गुप्त सुरंग का गुप्त द्वार जान रक्खा था। अतः वे पाँचो भाई और उनकी माता निकल कर जंगल में जा पहुँचे। ब्राह्मण के वेश में गुप्तरीति से वन में रहने

लगे। कुछ काल के अनन्तर द्रौपदी के स्वयम्बर की धूम सम्पूर्ण देशमें फैल गई। 'तेलमें मछलीकी छायाको देखकर उसकी आँख में बाण मारना, जो एक लोहे के स्तम्भ [खम्बा] के ऊपर चक्राकार घूम रही थी।' इस कार्यको भरी सभामें कर्ण ने पूर्ण किया परन्तु उस समय उसकी जाति का पता न लगने से उसके साथ विवाह

स्वीकार नहीं हुआ। तब ब्राह्मण वेषधारी
अर्जुन ने मछली की आँख का लक्ष्य भेद
किया। अर्जुन के गले में वरमाला पहिनाई
गयी, परन्तु जब अर्जुन रथ पर बैठाकर
चलने लगा तब सबने उसे ब्राह्मण देख
कोलाहल मचाया। उसी समय पाँचो वेश-
धारी क्षत्रियोंने अपने तीक्ष्ण बाणों से सभी
को आश्चर्य में डाल दिया। अब समझने

में सन्देह नहीं रहा कि ये पाँचो पाण्डव हैं। तब दुर्योधन को बड़ा भय हुआ कि मेरा पाप प्रकट होने पर प्रजा में विप्लव [उपद्रव] हो जायेगा उसने विचार किया कि उनसे मिलकर उस भेद को छिपा देना चाहिये। ऐसा काम किया भी फिर उन्हें उसी जङ्गल का राज्य दे दिया गया। युधिष्ठिर की धर्मपरायणता के कारण वहाँ की

सम्पूर्ण प्रजा उनपर ऐसी अनुरक्त हुई कि तनमन और धन से उनकी सेवा करने लगी। युधिष्ठिर महाराज भी जो भूमि उपजाऊ नहीं थी उसको उपजाऊ बनाने की रीति बताते तथा प्रजा को कष्ट होने पर तनमन धन से उनका कष्ट निवारण करते थे। कहा भी है। 'राजा प्रकृति रञ्जनात्' प्रजा को आनन्दित करने से ही राजा कहाता है।

का० २१

कुछ काल व्यतीत होने पर युधिष्ठिर महा-
राज की इतनी श्री वृद्धि हुई कि उन्होंने
"राजसूय" यज्ञ आरम्भ किया, उसमें दुर्यो-
धनादि सम्पूर्ण राजा महाराजाओं को
निमंत्रित किया उस यज्ञ की विचित्र रचना
को देख सभी चकित होगये। जहाँ जल
दिखाई देता था वहाँ स्थल था और जहाँ
स्थल दिखाई देता था वहाँ जल भरा हुआ

जहाँ दीवार दिखाई देती थी वहाँ पर द्वार था और जहाँ द्वार प्रतीत होता था वहाँ दीवार थी। जिस समय दुर्योधन घुमते २ द्वार समझ कर अन्दर प्रवेश करने लगा उसका शिर दीवार में टकरा गया जिससे बड़ा लज्जित हुआ। अभिमान के कारण आगे २ तो चलताही था अतःजलको स्थल समझ कर आगे बढ़ा तो पानी में जा पड़ा

३ का० ३३

कपड़े सब भींग गये लज्जा और क्रोध से उसका शरीर जलने लगा। प्रायः सभी को हँसी आ रही थी परन्तु भीतर ही भीतर रोके रहे। परन्तु जब वह अभिमानी स्थल को जल समझ धोती ऊपर उठा कर बढ़ा तभी एक आवाज सुनाई दी "अन्धे के अन्धे ही होते हैं" और साथ ही हँसीका शब्द भी सुनाई दिया, यह शब्द द्रौपदी का था,

जिसे सुनकर दुर्योधन को मानो आग लग गई उसने कहा "मुझे यहाँ बुलाकर मेरा अपमान किया गया। साथ में दुःशासनादि ने भी हाँ में हाँ मिलाई। गुरुजनों का संग त्याग और दुष्टजनों के संग चलने के कारण ही यद्यपि ये सब दुर्घटनायें बीतीं परन्तु उसने दोषी युधिष्ठिरादि को ही ठहराया। और उसने प्रतिज्ञा की कि जिसे

प्रकार भी होगा इनका राज पाट नष्ट भ्रष्ट कर दूँगा। और द्रौपदी को भरी सभा में अपनी जाँघ पर बैठाऊँगा। दुर्जनों से सुजनों की वृद्धि देखी नहीं जाती अतः घर आकर दुर्योधन ने दुःशासनादि के साथ गुप्त मन्त्रणा की और यह निश्चय किया कि द्यूतकर्म (जुआ) द्वारा इनको जीतकर वनवास कर दिया जाये अतः उन्हें

किसी विशेष गृहोत्सव में बुलाया और छल का०
कपट द्वारा जुए में उन्हें जीतकर १३ वर्ष
के लिये प्रसिद्ध रूप से तथा एक वर्ष गुप्त
रूपस रहने का वनवास दिया, यदि अन्त्यम
वर्ष में किसी भाँति भी जान लिये जायँ तो
फिर उनको पूर्ववत् वनवास में रहना होगा,
अस्तु उन्होंने वनवास के पूर्व वर्ष बिताकर
अंत्यम वर्ष भी राजाविराटके यहाँ गुप्तरूप ३७

से व्यतीत किया वनवास से लौटने पर जब
उन्हें राज देना अस्वीकार कर दिया तब श्री-
कृष्णाचन्द्रजी ने पाँचों पाण्डवों के रहने के
लिये केवल पाँच ही ग्राम देने के लिये कहा,
परन्तु दुर्योधन ने कहा कि बिना युद्ध के सुई
के अगले भाग जितनी भी भूमि न दूँगा।
तब विवश होकर युद्ध निश्चित हुआ।
कौरवों की ओर से ११ अक्षौहिणी और

पाण्डवों की ओर केवल ७ अक्षौहिणी सेना युद्धक्षेत्र में एकत्रित हुई। तब धृतराष्ट्र के हृदय में युद्ध देखनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। उन्होंने श्री वेदव्यासजी से अपनी इच्छा प्रकट की। व्यासजी ने कहा राजन् ! आप को मेरे शिष्य संजय सम्पूर्ण युद्ध का समाचार सुना दिया करेंगे। तब संजय ने व्यासजी से कहा भगवन् ! हस्तिनापुर से

युद्धक्षेत्र बहुत दूरी पर है मैं इन्हें यहाँ बैठे युद्ध समाचार कैसे सुनाऊँगा। तब वेदव्यास जीने "दिव्य दृष्टि" अर्थात दूरवीक्षण यन्त्र (दूरवीन) दी। संजय बड़े बुद्धिमान् थे धृतराष्ट्र के पूछने पर उन्होंने दिव्यदृष्टि द्वारा युद्धक्षेत्र की व्यूह रचना वर्णन करने के अनन्तर कहा राजन्! युद्धक्षेत्र में अर्जुन अपने चारों ओर सम्बन्धियों इष्ट-

मित्रों तथा सज्जनों को देखकर बिषाद को प्राप्त हुआ श्रीकृष्णचन्द्रजी से कह रहा है कि मैं इन गुरुजनों तथा अपने बान्धवों को नहीं मारूँगा, इस भयंकर पाप से तो भिक्षा वृत्ति से जीवन व्यतीत कर देना अच्छा है। अतः शस्त्र त्याग कर विषण्ण मन [दुःखित चित्त] हुआ रथ में बैठा है और श्रीकृष्ण-चन्द्रजी उसका मोह नाश करने के लिये

उसे समझा रहे हैं। मोह सम्पन्न अर्जुन जिस प्रकार विगत मोह होकर युद्ध में प्रवृत्त हो जाय इसलिये श्रीमद्भागवद्गीता की सृष्टि हुई।



❀ श्रीमद्भागवद्गीता भाषा प्रारम्भ ❀



धृतराष्ट्र ने संजय से कहा, हे संजय ! धर्मक्षेत्र अर्थात् धर्म पूर्वक युद्ध करने योग्य कुरुक्षेत्र में मेरे तथा पाण्डु के पुत्र एकत्रित होकर क्या कर रहे हैं ? संजय ने कहा, पाण्डवों की व्यूह-रचना की देख कर दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास पहुँच कर

बोला हे आचार्य! आपके शिष्य बुद्धिमान द्रुपदपुत्र से इस सुन्दरता पूर्वक रची हुई सेना को आप देखें जिसमें बड़े २ शूरवीर भीम अर्जुन के समान युद्ध करने वाले युद्ध का कामना से विराट, द्रुपद, महारथी धृष्टकेतु, चेकितान और वीर्य्यवान काशी-राज तथा पुरुजित, कुन्तिभोज, नरश्रेष्ठ शैव्य, युधामन्यु, प्रबल पराक्रमी उत्तमौज

सौभद्र.द्रौपदेय,ये सम्पूर्ण महारथि पाण्डवों की ओर से युद्ध करने के लिये उद्यत हुए हैं और हे द्विजश्रेष्ठ! हमारी ओर से युद्ध करने वाले जो बड़े २ नायक [मुखिया] हैं आपको उनको मैं नाम गिना देता हूँ। सब से प्रथम आप भीष्मपितामह, कर्ण, कृपाचार्य, सामितिञ्जय, अश्वत्थामा, वि-कर्ण सोमदत्ति इसी प्रकार मेरे लिये और भी

बहुत से शूरवीर अपने जीवन की आशाको
त्यागकर नाना प्रकार के शस्त्रों का चलाना
जानने वाले सब युद्ध-विद्या के जाननेवाले
उपस्थित हैं। इतना होने पर भी हमारा
सैन्यबल, भीष्म से रक्षित होने के कारण
अपर्याप्त (अपूर्ण) ही है। परन्तु उनका
भीम से रक्षित सैन्यबल पर्याप्त अर्थात्
पूर्ण है। इसके अनन्तर दुर्योधनने सम्पूर्ण

महारथियोंसे कहा कि आपलोग सब दिशा-
ओं से घेरे हुए जहाँ २ आपलोगों का खड़ा
किया गया है वहाँ से भीष्मपितामहजी की
ही रक्षा करें। भीष्मजी की ही रक्षा करने
के लिये कहने का तात्पर्य यह था कि
भीष्मजी धर्मप्रिय होनेसे तथा सबके पूज्य
होने से दोनों को समभाव से देखने वाले
हैं। इसलिये वे पूर्णबल से नहीं लड़ेंगे।

क्योंकि उनके लिये दोनों में से किसी की भी हानि होना समान ही है। इसलिये सम्भव है कि युद्ध त्याग दें। दुर्योधन के वाक्य को सुनकर कुरु वृद्ध भीष्मपितामह प्रतापवान्‌ने बड़े हर्ष को पैदा करते हुए सिंह के समान गर्जकर बड़े जोर के साथ शंख को बजाया। इसके पश्चात्‌ शंख भेरी पणा-वानकगोमुख आदि आदि अनेक रणवाद्य

एक साथ बजे । जिनका बड़ा भारी शब्द हुआ। इसके अनन्तर श्वेत घोड़ों से युक्त बड़े भारी रथमें बैठे हुए माधव और अर्जुन ने बड़े सुन्दर देवदत्त और श्रीकृष्णचन्द्र जी ने पांचजन्य शंख को बजाया । बड़े कठोर कर्म्म करने वाले वृकोदर [भीम] ने बड़े भारी शंखको बजाया सुघोष और मणिपुष्पक शंखोंको नकुल और सहदेव

ने बजाया। तदन्तर बड़े तीक्ष्ण बाण वाले काश्य तथा महारथ शिखण्डी धृष्टद्युम्न विराट सात्यकि अपराजित द्रुपद और द्रौपदेय महाबाहू सौभद्र ये सम्पूर्ण राजा लोग पृथक् २ अपने २ शंखोंको बजाने लगे। वह गगन भेदी शब्द सम्पूर्ण धृतराष्ट्र की सन्तानोंकाहृदय फाड़ता हुआ आकाश में व्याप्त होकर पृथ्वी को कँपाने लगा।

इसके अनन्तर बड़े वेग के साथ युद्ध होने लगा । तब कपिध्वज (अर्जुन) धनुष उठा करहृषीकेश [कृष्णजी]से बोला हे अच्युत! दोनों सेनाओं के बीचमें मेरे रथको खड़ा कीजिये । मैं दुर्बुद्धि दुर्योधनादि की युद्ध में भलाई चाहने वाले युद्धकी कामनासे युद्ध करने आये हुओं को देखना चाहता हूँ कि कौन मेरे साथ युद्ध कर सकता है संजयजी

का०

धृतराष्ट्र से बोले हे भारत! अर्जुन के ऐसा
कहने पर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने दोनों सेनाओं
के मध्य भाग में रथ को ले जा भीष्म और
द्रोणाचार्य के सामने खड़ा करके कहा हे
पार्थ! इन सम्पूर्ण इकट्ठे हुए कौरवों को
देखो तब अर्जुन वहाँ पिता, पितामह आचार्य
मामा भाई पुत्र पौत्र मित्र ससुर समस्त
बान्धवों तथा दोनों सेनाओं को खड़े देख

कर उनका हृदय दया से भर गया और वे दुखितहृदयसे इसप्रकारबोलेकिहेकृष्णजी! युद्ध की अभिलाषा से एकत्रित इन स्व-जनों को देखकर मेरे शरीराङ्ग शिथिल हो रहे हैं मेरा मुख सूख रहा है मेरा शरीर काँप रहा है तथा शरीर रोमाञ्च (बालखड़ेहोना) हो रहा है। और गांडीव [धनुष]हाथसे गिरा पड़ता है तथा सारे शरीर की त्वचा जलरही

है। मेरा मन घूम रहा है इसलिये मैं खड़ा
होने में असमर्थ हूँ। हे केशवजी! मैं अस-
मंजस में पड़ गया हूँ, मुझे सम्पूर्ण कार्य
उलटे ही दिखाई दे रहे हैं। इस रणभूमि में
अपने कुटम्बियों को मार कर मैं अपना श्रेय
अर्थात् कल्याण नहीं देखता हूँ। हे कृष्ण!
मुझे ऐसी विजय की आकांक्षा नहीं और
नहीं है ऐसे राज्य तथा सुखकी अभिलाषा,

जिनके लिये मैं राज्य भोग और सुखचाहता
हूँ। वे सब धन और प्राणोंका मोहत्यागकर
युद्ध में उपस्थित है। हे मधुसूदन! [मधु
राक्षसके मारने वाले] इन पूज्य आचार्य
पिता पुत्र तथा पितामह मामा श्वसुर पौत्र
श्याला [साला] आदि सम्बन्धियों से मारा
जानेपर भी मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा और
यदि मुझे इनके मारनेसे त्रैलोक्यराज्यअर्था

तू तीनों लोकोंका राज्य भी मिले तो भी मैं
उसे लेने के लिये तैयार नहीं फिर भला
इस तुच्छ पृथ्वी के राज्यकी क्या गणना ?
हे जनार्दन ! इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार
कर मेरा क्या लाभ होगा किन्तु इसके विप-
रीत इन आततायियों के मारने से मुझे पाप
ही लगेगा ! इस लिये अपने बन्धु दुर्यो-
धनादिको को मैं मारना उचित नहीं सम-

क्षता। हे माधव! अपने स्वजनों को मार कर हमलोग कैसे सुखी होंगे। लोभ से विचारहीन ये लोग यद्यपि कुल के नाश होने से क्या दोष होगा तथा मित्रद्रोह करने पर क्या पातक लगता हैं इसको नहीं देखते हैं। परन्तु हे जनार्दन कुलक्षय से उत्पन्न होने वाले दोष को सन्मुख देखते हुए भी हमलोग पहले ही इस पापसे क्यों न बचें।

हे कृष्णचन्द्रजी ! कुलक्षय होने पर सम्पूर्ण प्राचीन कुलके धर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्म के नष्ट होनेपर समस्त कुल अधर्मसे अभि-भव [तिरस्कार] को प्राप्त होता है। कुल के अधर्म युक्त होजाने से कुलस्त्रियें दूषिता हो जाती हैं। हे वार्ष्णेय। उन दुष्टा स्त्रियों में वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होती हैं, कुल के नाश करनेवालोंके कुलकी संकर सन्तानें

केवल नरक के लिये ही होती हैं। निश्चय
करके अन्न जलदान आदिक क्रिया के बन्द
होजाने से उनके पितर लोग नरक में गिरते
हैं। कुलके नाश करने वाले वर्णसंकरों
द्वारा किये हुए इन दोषों से जातिके धर्म
और कुल के धर्म सम्पूर्ण नष्ट कर दिये जाते
हैं। हे जनार्दन ! यह मैंने गुरुजनोंसे सुना ५९
है कि कुलधर्म नाशक पुरुषोंकावास निश्चय

नरक में होता है। अहो! बड़ा शोक है।
हमलोग इतना बड़ा पाप करने को तैयार
होगये, जो राज्य सुख के लोभ से हमलोग
अपने स्वजनों को मारने के लिये उद्यत
होगये। यदि बिना बचाव करते हुए शस्त्र
हीन मुझको हाथों में शस्त्र लिये हुए
धृतराष्ट्र के पुत्र रणमें मार डालें तब मेरा
कल्याण हो। संजय बोले हे राजन् ! इस

प्रकार कहकर रणमें शोक से सन्तप्तमन वाला अर्जुन बाण सहित धनुषको छोड़कर रथ में बैठ गया है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥



प्रथम अध्याय का माहात्म्य

एक समय श्रीकृष्णचन्द्रजी से श्रीलक्ष्मी जी ने अत्यन्त विनय के साथ हाथ जोड़कर पूछा, हे हृषीकेश। आपने ऐसी कौन सी श्रेष्ठ कृति की है कि जिसके प्रताप से आज आपकी संसार में पूजा हो रही है, सभी के हृदय-सिंहासन पर आप विराज रहे हैं,

जिधर सुनो उधर आपही की कीर्त्ति सुनाई
दे रही है। कृपाकर मुझे समझाइये, मेरी
उस कृति के जानने की प्रबल [बड़ी] इच्छा
है। अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रजी
ने कहा हे चञ्चले! जिस कृति के करने से
समस्त संसारी जन सुख-दुःख भूलजाते हैं।
जिसके धारण करनेसे मनोकामनायें पूर्ण
हो जाती हैं, और जिसके अभाव से ही

मनुष्यइससंसारजालमें फँसकर बड़ा २ दुःख उठाता है। देखो जिसका मैं तुम्हें थोडासा दिग्दर्शन (नमूना) कराता हूँ। वेदमें एक मन्त्र आया है [हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्] चमकीले पदार्थों से सत्यका मुख ढका हुआ है, चमकीले सोना चाँदी आदि के लालच में पड़कर मनुष्य कैसे २ निन्दित काम कर डालता है किसी

के प्राण तक ले लेता है और किसी की
झूठी साक्षी [गवाही] देता है, तो किसीका
राजछीन लेताहै, जगत्सम्बन्धी मिथ्या सु-
ख को सत्य सुख समझकर अज्ञता अर्थात्
मूर्खता के कारण ही दुर्योधनादिने पाण्डवों
की राज्य देना नहीं चाहथा जिसका परि-
णाम महाभारत का युद्ध है जब दोनों
सेनाओं के बीचमें अर्जुन रथपर बैठा हुआ

चारों ओर अपने स्वजनों को देख मोह में फँसकर बोला, मैं ऐसे राज्य, धन और सुख को नहीं चाहता, जो राज्य धन और सुख स्वजनों को मार कर मिले, वह विषादयुक्त होकर शस्त्रोंको त्याग कर रथमें बैठ गया और युद्ध से मुख मोड़ बैठा। लक्ष्मीजीने बीच में ही रोक कर कहा, यह तो उन्होंने अच्छा ही किया क्योंकि चमकीले पदार्थों

के लोभ में पड़कर उन्होंने स्वजनों की हत्या करना नहीं चाहा। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा, नहीं यह भी उनकी भूल थी, उन्होंने वर्णधर्मको न जानकर ऐसा किया था क्योंकि वेदमें लिखा हैं [ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्याः कृता उरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायतः] जिस प्रकार शरीर के मुख्याङ्ग शिर, बाहू, उदर [पेट]

और चरण है, उसी प्रकार मनुष्य जाति के भी चार अंग अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। देखो, जब पेटमें क्षुधा (भूख) लगती है। तब मस्तिष्क में उसके दूर करने की चिन्ता उत्पन्न हो जाती है भूख मिटाने की सामग्री का स्थान कानों द्वारा सुनकर मालूम हो जाने पर चरण इस देहको ढोकर वहाँ लेजाते हैं, जो कुछ वस्तु वहाँ मिलती

है पहले उसकी परीक्षा आँख उसे देखकर
कर लेती है, यदि आँखको अच्छी प्रतीत
होती है तो हाथ उसे उठा लेते हैं और मुहमें
डालने को जैसे ही उद्यत [तैयार] होते हैं
वैसे ही नाक उसके सुगन्ध दुर्गन्ध सड़े गले
की परीक्षा कर लेती है, जब वह वस्तु मुखमें
पहुँच जाती है तब उसके खट्टे मिट्ठे कड़वे
कसैले और नमकीन आदि रसोंकी परीक्षा

जिह्वा कर लेती है। पेट में गये हुए अन्नको
पेट स्वयं नहीं रख लेता वरन्, उसके पाचन
होजाने पर इसका रस सम्पूर्ण शरीर को
पहुँचा देता है। जो सबसे परीक्षित हो जाने
पर अन्न फलादि पेटमें पहुँचता है वह
शरीर को नैरोग्य [निरोग] रखता है। इस
दृष्टान्त से यह सिद्ध होता है कि शरीर को
सुखी रखने के लिये शरीर के सारे अंग गुण

कर्म के अनुसार मिलकर काम करते हैं
अर्थात् शिर, ज्ञानप्रधान होने से शरीर में
सबसे उत्तम अंग है क्योंकि सम्पूर्ण ज्ञान-
इन्द्रियें उसी स्थान पर एकत्रित हैं, जिस
कार्यका निश्चय हो जाता है उसकी पूर्त्ति
जिस अंग से हो सकती है वह अंग स्वयं
उस काम में लग जाता है, इसलिये देखो
जिस समय शिरपर अथवा शरीर के किसी

अंग पर चोट आनेवाली होती है जिसका कि ज्ञान क्षण भर भी पहले हो जाने से हाथ वहाँ पहुँच जाता है, यदि हाथ सँभाल न सके तो पाँव शरीर को लेकर भाग निकलते हैं तात्पर्य यह है कि जिस समय जिस अंग से रक्षा हो सकती है उस समय उसीसे की जाती है परन्तु चोट-फेट में रक्षा करनेवाला प्रधान अंग हाथ ही होता है और सबकी

सेवा करनेवाला पग ही है। जिस प्रकार
शरीर की रक्षा के लिये सम्पूर्ण अंग बनाये
गये हैं उसी प्रकार मनुष्यजाति की रक्षा
केलिये जातिके अंग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य
और शूद्र भी बनाये गये हैं। ब्राह्मण का
कर्तव्य है सच्चा ज्ञान सिखाना और क्षत्रिय
का धर्म है हाथों के समान सबकी रक्षा
करना और वैश्य का कर्म है पेट के समान

प्राप्त द्रव्यको जातिकी रक्षाके लिये लगाना
और शूद्रका कर्त्तव्य है सबकी सेवा करना।
सो हे लक्ष्मी ! शरीरके दृष्टान्तसे समझमें
आही गया होगा कि अर्जुन का कर्त्तव्य
क्षत्रिय होने से मोहयुक्त होकर युद्ध से
मुख मोड़ना नहीं, वरन् उसका धर्म है,
प्राण देकर भी धर्म और जातिकी रक्षा के
लिये उन दुष्ट अधर्मी तथा लोभी शत्रुओं

को मारना इस प्रकार जो लोग गीता के
प्रथम अध्याय के माहात्म्य को समझकर
गीता के प्रथम अध्यायका नित्य पाठ करते
हैं, वे लोग अवश्य दुःखसे छूटकर सर्वसुख
को प्राप्त होते हैं। तब लक्ष्मीजी ने कहा
इस गीता के प्रथम अध्याय के प्रभाव से
किसी मनुष्य की मुक्ति भी हुई? सो मेरे
सुननेकी बड़ी इच्छा हो रही है। श्रीकृष्ण-

चन्द्रजी ने कहा किसी ग्राम में एक दरिद्र रहता था, उसके घरमें एक पुत्र पुत्रवधु (पुत्रकी स्त्री) तथा उसकी स्त्रीके अतिरिक्त और कोई नहीं था। उसका पुत्र दुष्टों की संगतमें पड़कर जुआरी होगया। जब जुएमें सब धन हार गया तब चोरी करने लगा, चोरी में पकड़जानेपर उसे कारागार [कैद-खाने] जाना पड़ा, जेल से छूटकर वह

कुछ साथियों के साथ मिलकर दूर २ ग्रामों में डाका मारने लगा। उसकी स्त्री बड़ी सतीसाध्वी पतिपरायणा थी वह जप, तप, व्रत बड़े नियम से करती थी। एक दिन उसने एक बड़े विद्वान् पण्डित को गीताकी कथा कहने को कहा। पण्डितजी कथा कहने में बड़े चतुर थे, उन्होंने कथा कहने को स्वीकार कर लिया। रात्रि को कथा हो

रही थी उस समय डाका मारकर सुशर्मा घर लौटा था, वह भी कथा सुनने लगा उस समय गीता के पहले अध्याय की कथा हो रही थी। कथा सुनकर उसके मनमें अपने पाप कर्मों पर बड़ी घृणा उत्पन्न हुई, उसने उसी दिनसे दस्यु वृत्ति को छोड़ दिया और उस दिनसे मन वचन कर्म से गीताके प्रथम अध्याय का नित्य पाठ करने

लगा। उसका प्रेम प्राणिमात्र से देख सभी लोगजो उसे घृणाकी दृष्टि से देखते थे उससे स्नेह करने लगे। सच्चा प्रेम उसीका नाम है जिसके प्रभाव से सभी प्रेममय हो जायँ। जब सबने उसके पुण्यात्मा होनेका कारण जाना तब वे भी गीता का पाठ करने लगे उस एक पुण्यात्मा के संसर्ग [सम्बन्ध] से और भी अनेक पुण्यात्मा हो गये। जब

वह मरा तब गीता के प्रथम अध्याय के प्रभाव से स्वर्ग सुख को प्राप्त हुआ।

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे कमलेश्वरसंवादे गीताप्रथमोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम्।

अथ द्वितीयोऽध्याः ॥२॥

संजय जी बोले हे नरेन्द्र! मधुसूदनजी दया से भरे हुए अश्रुपूर्ण व्याकुल नेत्रों से देखते हुए दुःखित हृदय अर्जुन के लिये

बोले हे अर्जुन ! ऐसे विकट समय में यह
महामोह तुम्हारे हृदयमें किधरसे आघुसा?
जिसको भले लोग कभी पास भी नहीं
फटकने देते, जो नीचगतिको प्राप्त कराने
वाला और अपयश को देनेवाला है। हे
कुन्ति पुत्र! नामर्द मत बनो यह तुम्हें शोभा
नहीं देता। हे शत्रुओं के हृदय कँपानेवाले!
हृदय की ओछी दुर्बलता (कमजोरी) को

छोड़कर युद्ध करने के लिये खड़े हे जाओ।
अर्जुन ने कहा-हे मधुसूदन! मैं अपने पूज-
नीय भीष्म जी तथा द्रोणाचार्य्य जी के
साथ बाणों द्वारा कैसे युद्ध करूँगा ? इन
महानुभाव गुरुजनों को न मार कर इस
संसारमें हमारा भीखमाँगकर खाना अच्छा
है परन्तु इन धनलोभी गुरुजनों को मारकर
हमें इनके खून से सींचे हुए भोग ही तो

भोगने पड़ेंगे । हम इन पर विजय प्राप्त करलें अथवा वे हमपर विजय प्राप्त करलें इन दोनों बातों में कौनसी कल्याण करने वाली है यह तो मेरी समझ में ही नहीं आता । जो ये धृतराष्ट्र के पुत्र सामने खड़े हैं इनको मारकर हमें जीने की इच्छा ही न रहेगी दीनता के कारण मैं तो अपना आपा खो बैठा हूँ, धर्म के सम्बन्ध में मेरी

बुद्धि कुछ काम नहीं करती, इस लिये मैं आप से ही पूछता हूँ, जो बात निश्चय ही भलाई करनेवाली हो वही मुझे बतलाइये मैं आपका शिष्य हूँ मुझे शरण में आये हुय को भली भाँति समझा दीजिये । मुझे तो यदि पृथ्वीभर का अकण्टक राज्य या देवताओं का आधिपत्य [राज्य] भी मिल जाय तो भी ऐसा कोई उपाय दिखलाई

नहीं देता, जिससे इस इन्द्रियों की वृत्तियों
को सुखाने वाले शोक को नष्ट कर सकूँ।
९ संजयजी बोले हे भारत! शत्रुओंको संताप
देनेवाले अर्जुन ने इस प्रकार की बातें कहने
के बाद श्रीकृष्ण से इतना ही कहकर चुप
हो रहे कि मैं युद्ध न करूँगा। हे महाराज!
तत्पश्चात् दोनों सेनाओं के बीचमें खड़े इस
प्रकारशोक-सागर में डूबे हुए अर्जुन से

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने हँसते हुए कहा, तुमको जिनका सोच नहीं करना चाहिये, उन्हीं का सोच कर रहे हो और ज्ञान की बातें बघारते हो, विवेकी पण्डित लोग जीने और मरने वालों के लिये सोच नहीं करते हैं। ऐसा बात नहीं है कि मैं पहले नहीं था, तुम और ये राजा लोग नहीं थे और इसके बाद मैं तुम या ये सबलोग नहीं होंगे। जैसे

हर एक देहधारी को इसी देह में बालकपन जवानी और बुढ़ापा आदि अवस्थाएँ भोगनी पड़ती हैं। वैसेही एक देह छोड़ देने पर दूसरी देह मिल जाती है इससे यह चोला बदले जाने वाले सम्बन्धमें धीरपुरुष मोह नहीं करते। भाव यह है कि मृत्यु भी जवानी और बुढ़ापे की तरह देह की एक अवस्था है। उसके लिये सोच कैसा ? हे

कुन्ती पुत्र ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध
और गर्मी सर्दी सुख दुःख देनेवाले, उत्पन्न
और नाश होनेवाले होनेसे अनित्य अर्थात्
(सदा न रहनेवाले) हैं। इसलिये हे भारत !
उनको तुम्हें सहन करलेना ही उचित है।
हे पुरुष श्रेष्ठ ! जिस धीरपुरुष को सुख और
दुःख समान प्रतीत होते हैं, जिसे इन बातों
से दुःख नहीं होता वही मोक्षको प्राप्त होता

है। जो है नहीं वह हो नहीं सकता और जो है, उसका अभाव नहीं हो सकता। तत्व दर्शियों ने सत् जो विद्यमान और असत् जो अविद्यमान इन दोनों का अन्त पा लिया है। यह ठीक समझो कि संपूर्ण जगत् जिसमें व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है, वह ब्रह्म अविनाशी [नाश न होनेवाला] है और उस अव्यय [नाश रहित] तत्त्व का

कोई नाश नहीं कर सकता। हे भारत ! और जो इस शरीर में इस देह का स्वामी जीवात्मा है, वह नित्य [हमेशा रहनेवाला] अविनाशी और अप्रमेय अर्थात् किसी भी इन्द्रिय से जानने के योग्य नहीं तथा उसे प्राप्त होनेवाले शरीर नाशवान् और अनित्य हैं। इसलिये हे भारत तुम युद्ध करो। जो इसे मारने वाला समझता है अथवा ऐसा

समझता है कि यह मारा जाता है, वे दोनों ही अज्ञानी हैं, न यह किसीसे मारा जाता है और न किसीको मारता है। यह आत्मा न कभी पैदा होता है और न कभी मरता ही है। और यह भी नहीं की एकबार होकर फिर न हो, यह तो अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुरातन [सनातन] है। यह शरीर के नष्ट हो जाने पर भी नहीं मरता। हे पार्थ !

जिसने यह जान लिया कि आत्मा अवि-
नाशी, नित्य, अज और अव्यय है वह कैसे
किसी को मरवायेगा और मारेगा ? जैसे
मनुष्य पुराने कपड़ों को उतार कर नवीन
वस्त्र पहन लेता है। वैसेही शरीर में रहने
वाला जीवात्मा भी पुराने शरीर को त्याग
कर दूसरे नये शरीर को धारण कर लेता
है। इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते,

आग नहीं जला सकती, पानी भिगो नहीं
सकता और वाफ सुखा नहीं सकती। इस
लिये यह अछेद्य है क्योंकि इसे कोई काट नहीं
सकता इसलिये असह्य भी है क्योंकि इसे
कोई जला नहीं सकता और क्लेद्य तथा
अशोष्य भी इसलिये है कि इसको कोई
गीला तथा सुखा नहीं सकता। यह आत्मा
नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सना-

तन सदा रहनेवाला है। यह आत्मा इन्द्रियों
द्वारा जाना नहीं जाता, मन इसकी कल्पना
भी नहीं कर सकता; यह कभी विकार को
प्राप्त नहीं होता। इसको इस प्रकार समझ
कर तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये। और
हे महाबाहो! यदि तुम नित्यको सदा जन्म
लेनेवाला तथा मरनेवाला समझते हो, तो
भी तुम्हें इसका सोच करना नहीं चाहिये।

क्योंकि जो उत्पन्न होता है उसकी मृत्यु भी निश्चित है और जो मरता है उसका जन्म भी वैसेही निश्चित है। इसलिये परिवर्त्तनशील की तुम्हें सोच करना नहीं चाहिये। हे भारत! सम्पूर्ण भूत आदि में अव्यक्त, मध्य में व्यक्त और मृत्यु होने पर फिर अव्यक्त हो जाते हैं। अर्थात् सृष्टि के पूर्व प्रलय अवस्था में पृथ्वी, जल, अग्नि

वायु और आकाश ये सब भूत अव्यक्त अर्थात् कारणरूप प्रकृति के नामसे पुकारे जाते हैं और जब कार्य रूप जगत्की हालत में आ जाते हैं तब व्यक्त के नामसे पुकारे जाते हैं और जब वह फिर कार्यरूप व्यक्त-कारणरूपमें चलेजायेंगे तबफिर वे अव्यक्त के नाम से पुकारे जायेंगे। भूतनाम प्राणियों [जीवों] का भी है, प्रलयकाल में जीवात्मा

भी शरीर त्याग कर रहे हैं उस समय उनको अव्यक्त अर्थात् अशरीरी कहते हैं और जब वे जगत् में शरीर धारण कर लेते हैं तब उनको व्यक्त अर्थात् शरीरी [देहधारी] कहते हैं और जब फिर प्रलय अवस्था में चले जाते हैं तब फिर अशरीरी अर्थात् अव्यक्त कहलाते हैं। क्योंकि वहाँ उनकी सब कर्मगति रुक जाती है। जब इसका कोई

वर्णन करता है तो सुनने वाला आश्चर्य से सुनता है और देखने वाला आश्चर्य से देखता है। परन्तु यथार्थ में वह है क्या ? इसको कहने सुनने और देखने वाला कोई भी नहीं जानता। यह देही [जीवात्मा] सबकी देह में रहता हुआ सर्वथा अवध्य है अर्थात् कभी इसका वध नहीं किया जा सकता इसलिये तुम्हें इस संसार में भूतमात्र

के लिये सोच करना नहीं चाहिये। हे भारत! अपने धर्म को देखकर भी तुझे किसी प्रकार कँप कँपी नहीं आना चाहिये, क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्म युद्ध की अपेक्षा और कोई वस्तु श्रेयस्कर [कल्याणकारी] नहीं है। हे पार्थ! यह धर्म युद्ध स्वर्ग का खुला हुआ द्वार है, ऐसे युद्ध को कोई भाग्यवान् क्षत्रियलोग ही प्राप्त होते हैं। इसलिये यदि

तुम इस धर्मयुद्ध से जी चुराओगे, तो अपने
धर्म और यश का नाश करके पाप कमा-
ओगे। और तुम्हारे इस नाश न होने वाले
 अपयश को सम्पूर्ण जन सदा गाया करेंगे।
जिस मनुष्यकी कीर्त्ति संसारमें फैली हुईहो
उसकी अकीर्त्ति [निन्दा] होना मरने से
भी बढ़करहै। सब महारथी यही समझेंगे कि
तुम लड़ाई के डरसे भागरहे हो, जिनके मन

में आज तुम बड़े समझे जा रहे हो उन्हीं की दृष्टि में हलके हो जाओगे । तुम्हारे शत्रु तुम्हारे पराक्रम की निन्दा करते हुए बहुत सी ऐसी बातें कहेंगे जो न कहनी चाहियें । इससे बढ़कर और दुःख की बात क्या हो सकती है? हे कुन्ती नन्दन! यदि तुम युद्ध में मारे गये तो स्वर्ग पाओगे और यदि जीत गये तो पृथ्वी का राज्य भोगोगे । इस

लिये उठो और कमर बाँधकर युद्ध के लिये तैयार हो जाओ। सुख-दुःख हानि-लाभ जय-पराजय बराबर समझ युद्ध में लग जाओ। ऐसा करनेसे तुम्हें पाप नहीं लगेगा। हे पार्थ! यहाँतक तो साँख्य अर्थात् सन्यास निष्ठा के अनुसार तुम्हें बुद्धि अथवा ज्ञान कहा। अब जिसे बुद्धि अथवा ज्ञान से युक्त होकर तुम कर्म बन्धन से छूट सकोगे, उसे

सुनो। इस कर्म योग में किये हुए कर्म का नाश नहीं होता और विघ्न भी नहीं होता, इस धर्म का थोड़ा सा भी आचरण किया हुआ बड़े भारी भय से बचाता है। हे कुस नन्दन ! मार्ग में व्यवसाय बुद्धि अर्थात कार्य तथा अकार्य को निश्चय कराने वाली बुद्धि एक है उस बुद्धि को एकाग्र रखना पड़ताहै क्योंकि जिनमें बुद्धि की एकग्रता

(स्थिरता) नहीं होती, उनकी वासनायें अनेक शाखा प्रशाखाओं से युक्त और असंख्य प्रकार की है। हे पार्थ! सकाम (फल की इच्छा रखने वाले) स्वर्ग पर अर्थात स्वर्ग को ही सबसे बड़ा मानने वाले अविपश्चिता [अविद्वानों] का कथन है कि जो जन्म कर्म फल को देनेवाली यज्ञादि कर्म का विधान करनेवाली तथा भोग ऐश्वर्य

का मार्ग बताने वाली इस फल पुष्पवती वेदवाणी को वेद के वाक्यों का अर्थ मनन करने वाले वादी लोग इससे विपरीत नहीं कहते हैं, यह समझना उनकी भूल है प्रत्युत वेदवादरत पुरुषवेदोंमें सकाम और निष्काम दोनों प्रकार के कर्मों का विधान मानते हैं। क्योंकि भोग और ऐश्वर्य स जिनका हृदय खिंचा हुआ है उनको व्यवसायात्मिका

[निश्चय कराने वाली] बुद्धि समाधि में
स्थिर नहीं रह सकती । हे अर्जुन ! पृथ्वी,
जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पाँच तत्वों
के पाँच गुण क्रम से गन्ध, रस, रूप स्पर्श,
शब्द हैं ये पाँचों ज्ञान इन्द्रियों अर्थात्
नाक, जिह्वा, आँख, खाल, कान, मन आदि
के विषय है इन विषयों के सत रज तम भेद
से तीन प्रकार के ज्ञान होते हैं । सो हे अर्जुन

तुझे इन त्रिगुण वाले ज्ञानों से अलग होकर का०
अर्थात नित्यसत्वस्थ [शुद्धस्वरूप ब्रह्ममों
स्थित] सुखदुःखादि द्वन्दों से परे योग और
क्षेम आदि स्वार्थों के घेरों से बाहर हो जाओ।
जिस प्रकार जितना प्रयोजन जल से किसी
का, चारों ओर से जलसे भरे हुए तालाब
में सिद्ध होता है। उसी प्रकार ज्ञानी ब्राह्मण
का जितना कि वह चाहता है उतना प्रयो-

जन सिद्ध हो जाता है तेरा अधिकार केवल कर्म करने मात्र में है तुम्हारा अधिकार फल में नहीं इसलिये तुम कर्मफल के चाहने वाले मत बनो और तुम्हारा अकर्म में संग न हो। हे अर्जुन! कर्मफल का त्याग कर कार्य की सफलता और असफलता को समान मानकर योगस्थ होकर काम करो, यही समभाव योग है। हे धन-

ञ्जय ! बुद्धि से योग कर्म बहुत ही छोटा
हो जाता है, इसलिये बुद्धि की शरण तो;
जो कर्म फल चाहने वाले हैं वे तुच्छ मनुष्य
हैं। जो साम्य बुद्धि से युक्त होते हैं वे इस
संसार में पाप और पुण्य दोनों से अलग
हो जाते हैं। इसलिये तुम योग का ही आश्रय
ग्रहण करो पाप पुण्य से बचकर कर्म करने
के कौशल को ही योग कहते हैं। समता

बुद्धियुक्त ज्ञानी पुरुष कर्म फल का त्याग कर, जन्म मरण के झगड़े से छूट जाते हैं और उस परमपद को प्राप्त होते हैं, जहाँ दुःखका नाम पात्र नहीं है। जब तुम्हारी बुद्धि मोह का जंगल पारकर जायेगी। तब तुम उन बातों से विरक्त हो जाओगे। जो तुमने आजतक सुनी हैं अथवा आगे सुनोगे। अनेक प्रकार की बातें सुन२ कर

घबराई हुई तुम्हरी बुद्धि, जब समाधिस्थ
होकर स्थिर हो जावेगी, तभी तुमको यह
योग प्राप्त होगा। अर्जुन ने कहा हे माधव!
समाधिस्थ और स्थित प्रज्ञ किसे कहते हैं ?
ऐसे स्थित प्रज्ञ लोग क्या कहते हैं, कैसे
रहते और कैसे लेते है ? श्रीकृष्णचन्द्रजी
ने कहा हे पार्थ! जो मन से उत्पन्न होने वाले
सम्पूर्ण मनोर्थों का त्यागकर, अपने में ही

सन्तुष्ट रहता है, उसीको स्थित प्रज्ञ कहते है। जिनका मन दुःख में उद्विग्न नहीं होता और सुखमें जिसकी आसक्ति नहीं होती, जिसका राग, भय, और क्रोध नष्ट होगया है उसको स्थितप्रज्ञ मुनि कहते हैं। संसार में जिस पुरुष को किसी वस्तु से प्रेम नहीं होता जो किसी शुभ वस्तु को पाकर प्रसन्न नहीं होता और न किसी अशुभ वस्तु

को प्राप्त कर अप्रसन्न होता है उसकी बुद्धि
स्थिर समझनी चाहिये। जैसे कछुआ चारों
ओर से अपने अंगों को सिकोड़ लेता है
वैसे ही जो सब विषयों से इन्द्रियाँ खींच
लेती है, उसी की बुद्धि स्थिर है। विषयों से
पृथक् हो जाने पर भी मनुष्य के मन से
उनकी चाह नहीं दूर होती। विषय और
उनकी चाह भी परब्रह्म के दर्शन हो जाने

पर नष्ट हो जाती हैं। हे कौन्तेय! विवेकी पुरुषों के इन्द्रियों के दमन करने की चेष्टा करते रहने पर भी ये मोह में डालने वाली इन्द्रियें उनके मनको अपनी ओर खींच लेती हैं। सम्पूर्ण इन्द्रियों को दमन कर अपनी आत्मा में लगाता है और जिसकी इन्द्रियें उसके वशमें होती हैं, उसकी स्थिर बुद्धि होती है। विषयों का ध्यान करते २

मनुष्य को उनसे बड़ा प्रेम हो जाता है; उस स्नेह से काम अर्थात् इच्छित विषयों को पाने की अभिलाषा उत्पन्न होती है और उस इच्छा के पूर्ण न होने पर क्रोध पैदा होती है। क्रोध से सम्मोह अर्थात् अज्ञान उत्पन्न होता है, अज्ञान से स्मृति नष्ट होती है स्मृतिनाश से बुद्धिनाश, और बुद्धि नाश होनेपर सर्वनाश हो जाता है।

परन्तु जिसने अपने को वश में कर लिया है वह अपनी इन्द्रियों द्वारा जो सर्वथा उसके वशमें होती हैं विषयों का भोग करता हुआ भी राग, द्वेष से परे होने के कारण, आनन्द प्राप्त करता है। आनन्दित मन होने से सब दुःखों का नाश हो जाता है। जिसका चित्त प्रसन्न रहता है उसकी बुद्धि भी स्थिर हो जाती है। जो मनुष्य ऊपर दिखाई रीति

से योग युक्त नहीं हुआ अर्थात् जिसे समता ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती। उसकी भावना भी स्थिर नहीं होती जिसकी भावना स्थिर नहीं, उसे शांति नहीं मिल सकती। फिर अशान्त मनुष्यको सुख कहाँ मिल सकता है? जो मन विषयों के पीछे दौड़ा फिरता है वह बुद्धिको भी हर लेता है, जैसे जलमें नावको वायु हर लेती

है। इसलिये हे महाबाहो अर्जुन ! जिसका मन इंद्रियों के विषय से एकदम हटगया है, उसकी बुद्धि स्थिर समझनी चाहिये। सब लोग जिसे रात कहते हैं उसमें संयमी पुरुष जागता रहता है। जिसमें सम्पूर्ण संसार जागता है। उसे तत्त्वज्ञानी मुनि रात ही समझता है। तात्पर्य यह है कि संसार की मोह माया में लिपटे हुए लोग जिसे

सच्चा समझते हैं उसको मुनि लोग झूठा
समझते हैं और जो तत्त्व की बात उनकी
आँखों से छिपी हुई है, उसे मुनि लोग स्पष्ट
देखते हैं। जलसे भरे हुए अचल समुद्र में
जैसे चारों ओर से जल निरन्तर आकर
भरता है, वैसे ही जिसके पास इच्छा न
होने पर भी सभी विषय भोग आप से आप
पहुँचते रहते हैं उसे ही शान्ति मिलती है

न कि उसको जो इन विषयों के पीछे बेचैन बना फिरता है। जो पुरुष सभी कामनाओं को त्याग कर, निस्पृह होकर आचरण करता है। जो ममता और अहंकार से परे होगया है उसीको शान्ति मिलती है। हे पार्थ! यही ब्राह्मी स्थिति है अर्थात् ब्रह्मको प्राप्त करने वाले पुरुष इसी स्थितिको प्राप्त होते हैं। इस स्थितिको प्राप्त करने पर प्राणी

फिर मोह में नहीं पड़ता और मरने के समय उसी में टिका हुआ ब्रह्मनिर्वाण की उपाधि (पदवी) पाता है अर्थात् ब्रह्ममें विचरण करता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन
सम्बादे साख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



अथ द्वितीय अध्याय का माहात्म्य ।



लक्ष्मीजीने नारायणजी से कहा प्रथम अध्याय का माहात्म्य जो आपने सुनाया उसके सुनने से मेरी इच्छा दूसरे अध्याय के माहात्म्य सुनने की भी होरही है । तब नारायणजी ने कहा हे प्रिये ! दक्षिण दि-शा में इन्द्रपुर नामक नगर है उसमें एक

विष्णु शर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। वह वेदादिसत् शास्त्रों का जानने वाला तथा देव पितरों का पूजन करने वाला बड़ा ही सदाचारी मनुष्य था। घर पर आये गये साधु महात्माओं का अतिथि सत्कार करने के बाद धर्मसम्बन्धी प्रश्न पूछा करता था। एक दिन उसके द्वार पर भ्रमण करता हुआ एक बालब्रह्मचारी आया। विष्णु

शर्मा ने उनका बड़ा आदर सत्कार कर बड़ी श्रद्धा के साथ कहा हे महात्मन् ! मुझे आप ब्रह्मज्ञान का उपदेश कीजिये जिससे मैं निर्वाण पद [मोक्ष] को पा सकूँ। तब ब्रह्मचारी ने कहा हे शर्मन् ! आपने यथायोग्य ही प्रश्न किया है। इसका उत्तर गीताके दूसरे अध्याय में है सो मैं तुम्हें सुनाता हूँ उसके सुनने से तुम्हारा कल्याण होगा।

तब विष्णु शर्माने कहा हे ब्रह्मचारीजी ! इस अध्याय के सुनने से कोई पहले भी मुक्त हुआ हो तो पहले उसका वृतान्त सुनाइये । तब ब्रह्मचारीजी बोले मैं तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ । एक वन में जहाँ मैं तप किया करता था । वहाँ एक भवाली नामका चरवाहा प्रतिदिन बकरि-याँ चराने आया करता था एक दिन मैं

समाधि लगाये बैठा था मेरी एक ओर सिंह बैठा था और दूसरी ओर हरिनियों के बच्चे कूद फाँद मचा रहे थे। ऐसे ही समय में ग्वाली बकरियों को वन में चरने को छोड़कर मेरी कुटी पर आया। वहाँ की ऐसी अवस्था देखकर वह डरा और एक पेड़पर चढ़ गया जब उसने अपनेको निर्भय समझ लिया तब उसने कुटी की ओर

देखा तो वह चकित होकर सोचने लगा
कि हरिनियों के बच्चोंको सिंह क्यों नहीं
पकड़ता ? इतना सोच ही रहा था कि मेरी
समाधि टूटी देख उसने पुकारा। जब मेरी
दृष्टि उस पर पड़ी उस समय वह काँप रहा
था। मैंने उसे निकट [पास] आने को कहा
यद्यपि प्रथम उसने इन्कार किया परन्तु
मेरे उत्साह दिलाने पर वह मेरे पास आया

और साष्टांग प्रणाम कर पहले अपनी सारी अवस्था सुना गया और फिर बोला महात्माजी! यह सिंह इन बच्चों को क्यों नहीं खाता? मैंने उससे कहा, यह अहिंसा व्रत का प्रताप है! जो मनुष्य अहिंसा व्रत को धारण कर लेता है उसके पास आने वाले हिंसक [मार डालने वाले] जीव भी वैरभाव [दुश्मनी] को छोड़देते हैं, ऐसा ही हमारे

पूर्व आचार्यों ने अपने शास्त्रों में कहा भी है कि (अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः) इस लिये जो कुछ तुम देखकर आश्चर्ययुक्त हो रहे हो सो वह मेरे अहिंसा व्रतका प्रभाव है। तब प्रवाली बोला मुझे भी ऐसी शक्ति दीजिये जिससे मुझे किसी से डर न हो। तब मैंने उससे कहा कि तुम गीता के दूसरे अध्याय का पाठ सुनो ऐसा

कहकर मैंने उसे जैसा ईश्वर ने जीव और प्रकृति तीनों का वर्णन गीता में किया है कह सुनाया। सो हे विष्णु शर्मा ! वह गड़े-रिया उस अध्याय को सुनकर ऐसा ज्ञानी हुआ कि घर द्वार त्याग मुझसे योगाभ्यास सीखकर ब्रह्म में ऐसा लवलीन हुआ कि मोक्षपद को पा गया। सो हे नरपुंगव यदि तुम भी इस अध्याय को ध्यान से सुनकर

उसपर आचरण करोगे तो अवश्य मोक्षपद को पाओगे। ऐसा कहकर हे लक्ष्मी! उस ब्रह्मचारी ने गीता के दूसरे अध्याय को सुनाया, जिसके प्रभाव से वह विष्णु शर्मा भी निर्वाण पद को प्राप्त हुआ।

इति श्री पद्मपुराणे लक्ष्मीश्वर सम्बादे उत्तरखण्डे गीतायां द्वितीऽ-
योध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥३॥



अर्जुन ने कहा हे जनार्दन! जब आप भी कर्मसे बुद्धि को श्रेष्ठ मानते हैं तो फिर हे केशव! मुझे क्यों इस घोर कर्म में प्रवृत्त कर रहे हैं? अनेक प्रकार की उलझन में
डालने वाली बातें कहकर मेरी बुद्धि को १।२
मोह में फँसा रहे हैं, इस लिये ऐसी कोई

निश्चित बात बतलाइये, जिससे मेरी भलाई हो। श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले हे अनघ! अर्थात् पापरहित; मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ, कि इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा होती है अर्थात् एक तो साँख्य वालों का ज्ञानयोग और दूसरी योगियों का कर्म योग। काम आरम्भ न करनेसे कोई निष्कर्म नहीं हो जाता और संन्यास से कर्मों को

त्याग देने से ही किसी को सिद्धि नहीं प्राप्त
हो जाता। क्योंकि मनुष्य एक क्षण भी
बिना कर्म किये नहीं रह सकता। प्रकृति
से होनेवाले स्वभावसिद्ध कर्म अर्थात् आँखों
का पलक मारना, कानों से शब्द का सुनाई
देना आदि २ बिना हुए नहीं रह सकते
कारण कि मनुष्य उनका अभ्यासी होने से
उनके वशमें हो चुका है। जो मनुष्य कर्म

इन्द्रियों को रोक कर विषयों का ध्यान करता है वह पाखण्डी धूर्त्त मूढ़ मनुष्य इन्द्रियों के विषयों का ध्यान करने वाला मिथ्याचारी कहाता है। परन्तु हे अर्जुन ! जो अपनी इन्द्रियों को अपने आधीन करके और आप उनके आधीन न होकर उनसे काम लेता है, वह कर्म योग का अभ्यास करने वाला श्रेष्ठ पुरुष है। इस लिये तुम

वेदोक्त नियत कर्म करो, कर्म न करने से कर्म करना निश्चय श्रेष्ठ है। बिना काम किये तुम्हारी शरीर यात्रा भी तो नहीं चल सकती अर्थात् यदि खाना, पीना आदि कर्म न करोगे तो जीना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव ही हो जायेगा। यज्ञ के लिये किये जाने वाले कर्मों को छोड़ कर और जितने कर्म हैं, वे इस संसार में बन्धन के

कारण होते हैं, इस लिये हे कौन्तेय ! तुम संग से मुक्त होकर यज्ञके कर्म करो। सृष्टि के आरम्भ में जब प्रजापति ने प्रजा की उत्पत्ति की उसी समय यज्ञ भी उत्पन्न किया और प्रजा से कहा कि इसी से तुम्हारी वृद्धि होगी, यह तुम्हारी इच्छाओं के लिये कामधेनु का काम देगा। इस यज्ञ से तुम देवताओं को प्रसन्न किया करो और वे

देवता तुमको प्रसन्न करेंगे, इस प्रकार एक दूसरे को प्रसन्न करते हुए दोनों कल्याण को प्राप्त होंगे। यज्ञ से प्रसन्न होकर देवता तुम्हारी इच्छानुसार सुख की सामग्रियाँ तुम्हें देंगे, परन्तु उनके दिये हुए दान को जो उनके लिये विना दिये स्वयं भोग करता है वह नर निश्चय चोर है। जो लोग यज्ञ करके यज्ञ शेषका भोग करते हैं वे लोग

पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो लोग
केवल अपने ही लिये अन्न पकाते हैं वे
पापी मानों पापको खाते हैं। सम्पूर्ण प्राणी
अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न मेघ
से उत्पन्न होता है, मेघ यज्ञ से उत्पन्न
होता है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है।
कर्मकी उत्पत्ति ब्रह्म अर्थात् वेदसे होती है
और वह वेद अविनाशी परमात्मा से प्रकट

होता है सो इस लिये सर्वव्यापक नित्य ब्रह्म सम्पूर्ण यज्ञ में स्थित हैं। इस प्रकार चलाये हुए चक्रके अनुसार जो मनुष्य नहीं चलता है। इन्द्रियों के विषयों में फँसा हुआ वह नर हे पार्थ ! अपनी आयु को पाप पूर्ण बनाता हुआ व्यर्थ जीता है। किन्तु जो मनुष्य आत्मा में ही रत है और आत्मामें ही तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो रहता

है, उसके लिये कोई काम करने को बाकी नहीं रहता। वह कोई कार्य करे अथवा न करे उसका कोई हानि लाभ नहीं होता, इस लोक में किसी प्राणी से उसका कोई स्वार्थ नहीं रहता। इस लिये तुम भी आसक्ति को छोड़कर सदैव अपना कर्त्तव्य पालन करते रहो, इस तरह आसक्ति त्याग कर कर्म करने से मनुष्य परमपुरुष अर्थात् परमात्मा को

प्राप्त होता है। जनकादि लोगों ने भी इसी प्रकार कर्म करके सिद्धि प्राप्त की थी, लोक संग्रह की ओर दृष्टि रखकर भी तुम्हें कर्म करना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष जैसा २ आचरण करता है अन्य लोग भी उसीका अनुसरण करते हैं, श्रेष्ठ व्यक्ति जिसे उत्तम बतलाता है दूसरे लोग भी उसे ही श्रेष्ठ मान कर उसके पीछे २ चलते हैं। हे पार्थ ! तीनों

लोकों में मेरा ऐसा कोई भी काम करने को बाकी नहीं रह गया है और न कोई ऐसी वस्तु ही बची है जो प्राप्त करने के लिये शेषहो, परन्तु फिर भी मैं कर्म कर रहा हूँ। हे अर्जुन ! यदि मैं आलस्य त्याग कर कर्म करने में लगा रहूँ तो मनुष्य हर प्रकार से मेरा ही अनुकरण करने लगेंगे। यदि मैं कर्म न करूँ, तो ये सभी लोक नष्ट हो जायेंगे

और मैं ही संसार में वर्णसंकरों के उत्पन्न करने का कारण होकर प्रजा का नाश करने वाला बनूँगा। हे भारत! जैसे अज्ञानी लोग आसक्ति रखकर कर्म करते हैं, वैसेही लोक संग्रह की इच्छा रखने वाले ज्ञानियों को चाहिये कि आसक्ति छोड़कर कर्म करें। जो आसक्तिके साथ कर्म में लगे हैं विद्वान उनमें बुद्धि भेद न करें। स्वयं योग युक्त होकर

कार्य करते हुए उन्हें भी कर्म में लगाये रहें। प्रकृति के गुणों से ही सभी कर्म उत्पन्न होते हैं, जिसकी बुद्धि पर अहङ्कार का परदा पड़ा हुआ है, वही यह कहता है कि मैं हूँ। हे महाबाहो! जो गुण और कर्म के विभाग का सच्चा तत्त्व जानता है वह गुणों को गुणों में ही जानकर कर्मों में आसक्त नहीं होता। प्रकृति का गुण न जानने वाले गुण कर्म

में लिप्त होते हैं, ऐसे अज्ञान और मन्द बुद्धि लोगों को तत्त्वज्ञानी पुरुष कर्म से अलग न करें। इसलिये अध्यात्मबुद्धि से सम्पूर्ण कर्मों को आत्मा पर त्याग करके, फलकी आशा और ममता को छोड़ तथा शोक रूपी ज्वर को मन से हटाकर युद्ध करो जो श्रद्धावान् पुरुष मेरे इसकथनपर विश्वास कर द्वेष वश छिद्रान्वेषण नहीं करते वे भी

कर्म के बन्धनों से छुटकारा पा जाते हैं। और जो लोग द्वेष वश छिद्रान्वेषण करते हुये मेरे मत पर स्थिर नहीं रहते उन सर्व-ज्ञान हीन मनुष्यों की बुद्धि मानों नष्ट होगई है। ज्ञानवान मनुष्य भी अपने स्वभाव के अनुसार ही चेष्टा करता है जब कि सम्पूर्ण प्राणी प्रकृति के अनुकूल ही कर्म करते हैं तब निग्रह करने से क्या? इन्द्रियों का अपने

अपने विषयों की ओर स्वभाव से ही राग द्वेष रहता है, परन्तु मनुष्य को इसके फेर में नहीं पड़ना चाहिये, क्योंकि ये शत्रु हैं। दूसरे का धर्म धारणकरने की अपेक्षा अपना गुणरहित धर्म भी अच्छा है, अपने धर्म में मरना श्रेष्ठ है, पराया धर्म बड़ा ही भयङ्कर होता है। अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्रजी से कहा हे वृष्णिनन्दन! पुरुषकी इच्छा नहीं होते

हुये भी उसे कौन बलपूर्वक पाप मार्ग में ले जाता है? श्रीकृष्णजी बोले हे अर्जुन! मनुष्यों को पाप के मार्ग में लेजाने वाले रजोगुण से उत्पन्न काम और क्रोध हैं, ये बड़े भारी पेटू तथा महापाप शत्रु हैं। जैसे आग धुयें से ढकी रहती है, दर्पण मैल से धुंधला दीखता है गर्भ का बालक झिल्ली से ढका रहता है, वैसेही इस काम से सारा

संसार ढका रहता है। हे अर्जुन ! यह कभी तृप्त न होने वाली कामरूपी अग्नि मनुष्य को सदा वैरिन है, इसी ने ज्ञानियों के ज्ञान को भी ढक रक्खा है। इस काम के ठहरने की जगह इन्द्रियाँ मन और बुद्धि है, इन्हीं के सहारे यह ज्ञान को ढक कर मनुष्य को मोहित करता है। इस लिये हे भरतर्षभ ! पहले इन्हीं इन्द्रियों को वश में लाकर ज्ञान

विज्ञान का नाश करने वाले, इस महा भया-
नक कामरूपी शत्रु को मार डालो । कहते
हैं कि इन्द्रियाँ शरीर से परे हैं, मन इन्द्रियों
से परे है, बुद्धि मन से परे है और बुद्धि से
भी परे यह देही अर्थात् आत्मा है । हे
महाबाहो ! इस प्रकार जो आत्मा बुद्धि से
भी परे है, उसको पहचान कर अपने को
अपने आधीन रखकर उस प्रबल शत्रु काम

को मार डालो ।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्ययां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-र्जुन संबादे कर्मयोगोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ तृतीयाऽध्याय का महात्म्य ।

श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले हे चञ्चले ! तुमने द्वितीयऽध्याय का महात्म्य सुना, अब मैं तुम्हें तृतीयाऽध्याय का माहात्म्य सुनाता

हूँ परन्तु वह बड़ा ही कठिन है। जिस समय
कौरव पाण्डव दलमें युद्ध आरम्भ हो रहा
था उसी समय अर्जुन के हृदय में वैराग्य
पैदा होगया। मैंने उसे अनेक प्रकार ज्ञान
काण्ड की सूक्ष्मता समझाते हुए कर्म करने
का उपदेश किया परन्तु उस समय उसके
हृदय में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि जब
ज्ञान काण्ड से परमानन्द प्राप्त हो सकता

है तब मेरे लिये इस युद्धरूपी घोर कर्म का उपदेश क्यों किया जा रहा है? उस समय मैंने उसे दोनों की सार्थकता जिस प्रकार वेदों में समझाई है। उसी प्रकार समझाना आरम्भ किया अर्थात् (विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते) जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही

साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मो-
पासनासे मृत्युकोतरके विद्या अर्थात् यथार्थ
ज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है। हे अर्जुन!
इसकी बारीकी यदि मोटे रूपमें समझना
चाहते हो तो इस प्रकार समझो। जैसे कोई
मनुष्य नाव बनाने की विद्या को पूर्ण रीति
से जानता हो और उसको चलाना अर्थात्
खेना भी जानता हो, परन्तु उस ज्ञान को

रखते हुए भी यदि वह पुरुष उस ज्ञान के अनुसार नाव न बनावे और उसपर चढ़कर उसको न चलावे तो क्या वह पुरुष केवल ज्ञान मात्रसे समुद्रको तर सकता हैं ? जिस प्रकार बिना कर्मकाण्डमें आये इसका ज्ञान निष्फल होता है ठीक इसी प्रकार बिना कर्मकाण्ड के ज्ञानकाण्ड निरर्थक है परन्तु जिस प्रकार कर्मसे ज्ञान सफल होता है

उसी प्रकार कर्मके लिये ज्ञान भी परमावश्यक है, क्योंकि विना जाने कोई कर्म कैसे कर सकता है। जिस प्रकार मनुष्य ज्ञानपूर्वक नौका को बनाकर तथा उसको खे कर समुद्र से पार उतर जाता है उसी प्रकार कर्म द्वारा मृत्युरूप इस असार संसार रूपी समुद्र को तरकर मनुष्य ज्ञान द्वारा अमृतत्व अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है।

हे लक्ष्मी ! इस प्रकार इस ज्ञान और कर्म के रहस्य को जानकर अर्जुन कर्म करने को तत्पर हो गया। उसकी वही गति हुई जो वेदानुकूल करनेवालों की परम गति होती है इसलिये जो पुरुष इस अध्याय के गूढ़ तत्व को जानकर उसके अनुकूल आचरण करेगा वह अवश्यही मोक्षपद को प्राप्त होगा



❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀



भगवानने कहा, यह कभी नष्ट नहीं होने वाला योग मैंने ही विवस्वान को बतलाया था, सूर्यने मनुको और मनुने राजा इक्ष्वाकु को बताया। हे परन्तप ! इस प्रकार परम्परा से प्राप्त हुआ यह योगराजर्षियों ने जाना,

परन्तु बहुत दिन बीत जाने पर संसार के मनुष्य इसे भूल गये। वही प्राचीन योग आज मैंने तुम्हें बताया है तुम मेरे भक्त और मित्र हो, इसी लिये मैंने तुम्हें यह उत्तम रहस्य बतला दिया। अर्जुन ने कहा, आप का जन्म तो अभी हाल ही में हुआ है और विवस्वान न जाने कब हुए, फिर मैं कैसे समझलूँ कि आपने ही प्रारम्भ में इस योग

का कथन किया है। श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले
हे अर्जुन ! मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म
व्यतीत हो चुके हैं, मैं तो उन सबका हाल
जानता हूँ परन्तु हे परन्तप! तुम नहीं जानते
मैं अजन्मा अव्यय और सम्पूर्ण भूतमात्र
का स्वामी होता हुआ भी अपनी ही प्रकृति
में अधिष्ठित हो अपने ही स्वभाव से जन्म
लेता रहता हूँ। हे भारत! जब २ धर्म

की हानि होती है और अधर्म की बढ़ती होती है, तब तब मैं अपने आपको उत्पन्न करता हूँ। साधुओं की रक्षा पापियों का संहार और धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिये मैं प्रत्येक युग में जन्म लेता हूँ। हे अर्जुन ! मेरे ऐसे दिव्य जन्म और कर्म का मर्म जो जानता है वह देह छोड़ने के बाद फिर जन्म न लेकर मेरे भाव का प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार रोग भय और क्रोध छोड़ कर
मुझमें जो मन लगाये हुए और मेरी शरण
मे आये हुए बहुत से लोग ज्ञानरूपी तप से
पवित्र होकर मुझमें आ मिले हैं। जो लोग
मुझे जिस भाव से भजते हैं, उन्हें मैं उसी
भाव से भजता हूँ, हे पार्थ! सब तरफ से
मनुष्य मेरे ही रास्ते में आ मिलते हैं। कर्म
की सिद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष इस

लोक में देवताओं की पूजा इसीलिये करते हैं, कि इस कर्म की सिद्धि इसी लोकमें तुरत हो जाती है। गुण और कर्म का विभाग करके वर्णाश्रमधर्म की मैंने ही सृष्टि की है, इस सृष्टि का कर्त्ता भी तुम मुझ अकर्ता और अव्यय को ही जानो। मैं कर्म फलकी इच्छा ही नहीं रखता इसलिये मुझे कर्म फल लिपायमान नहीं होते। जो मुझे ऐसा

जानता है, उसे कर्म की फाँस नहीं लगती।
पूर्वकाल में मोक्षार्थियों ने ऐसा ही समझ
कर कर्म किया है, इसलिये तुम भी पूर्व
लोगों के किये हुए कर्मोंको ही करो। कर्म
अकर्म क्या है? इस चक्कर में बड़े २
बुद्धिमान् भी हैं, इसलिये मैं तुम्हें वह कर्म
बतलाता हूँ जिसे जानने पर तुम अशुभ से
छुटकारा पा जाओगे। कर्म की गति गहन

है अतः कर्म, विकर्म, अकर्म तीनों को जानना चाहिये। जो मनुष्य कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखता है वही मनुष्यों में बुद्धिमान् योग-युक्त और सब कुछ किये हुए हैं। बुद्धिमान लोग उसे ही पण्डित कहते हैं, जिसके सभी प्रयत्न वासना से रहित होते हैं और जिन्होंने ज्ञानकी अग्नि में सम्पूर्ण कर्मों को जला डाला है। जो

कर्मफल की आसक्ति को छोड़कर नित्य सन्तुष्ट रहता हुआ कर्म फल का आश्रय नहीं रखता, वह कर्म करता हुआ भी मानों कुछ नहीं करता। जिसने कर्मफलकी आशा छोड़ दी है चित्त और आत्माको संयत कर रक्खा है, सब परिग्रहों अर्थात् सांसारिक सुखोंके साधनोंको छोड़ दिया है, वह केवल शारीरिक कर्म करता हुआ कभी पाप का

भागी नहीं होता। कोई योगी समस्त कर्मों को ब्रह्मार्पण कर देते हैं कोई देवताओं की उपासना करते हुए यज्ञोंके द्वारा देवताओं का पूजन करते हैं कोई इन्द्रियों के दमन हेतु इन्द्रियोंके कर्मोंको इन्द्रियोंमें ही हवन करतेहैं कोई द्रव्ययज्ञतपयज्ञ योगयज्ञ स्वाध्याययज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ इन पाँचों यज्ञोंको दृढ़ ब्रत होकर करते हैं, प्राणायाम करते

हुए कोई तो प्राण और अपान की गति रोक कर प्राण वायुको अपान वायु में और कोई अपान वायुका प्राण वायु में हवन करते हैं। इस भाँति के बहुत से यज्ञ हैं परन्तु यज्ञ पाप के नाश करने वाले होते हैं इनको तुम जान कर मुक्त हो जाओगे। हे परंतप ! द्रव्य यज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है जिस ज्ञानको जानकर आज जो यह भ्रम तुमको उत्पन्न हुआ है

सो फिर न होगा और सम्पूर्ण सृष्टिको अपनी आत्मा में और अपने को मुझमें देखोगे। कदाचित् तुम सब पापियों में उत्तम भी गिने जाओ तो भी ज्ञानकी नौकासे तुरन्त सब पापोंसे पार उतर जाओगे। जैसे जलती हुई अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है उसी भाँति ज्ञानरूपी अग्नि सब पापों को भस्म कर देती है। ऐसा यह उत्तम ज्ञान हमने

तुम से कहा है कि जिस ज्ञानको पाकर मनु-
ष्य शीघ्रही मोक्षपद को पाता है और इसमें
सन्देह रखनेवालेको इसलोकऔर परलोक
में सुख व मोक्ष कुछ भी नहीं मिलता। हे
धनञ्जय! कर्म फल त्यागी और आत्मज्ञानी
को कर्म बाँध नहीं सकता। हे भारत! तुम्हारे
हृदय में जो यह ग्लानि उठी है उसको कर्म
योगरूपी तलवार से काटकर युद्ध के लिये

पुरुषार्थ करो तुम्हारा इसमें कल्याण है।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-र्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



अथ गीताके चौथे अध्याय का माहात्म्य।



श्रीभगवान् ने लक्ष्मीजी के प्रति कहाकि हे प्रिये! गीता के चौथे अध्याय का माहा-

त्म्य सुनो । गंगाजी के तटपर जहाँ श्रीविश्वे-
श्वरजी विराजमान हैं वहाँ पर एक भरत
नामक मुनि हुए हैं वह सदैव गीता का पाठ
किया करते थे एक दिन तपस्वी भरत जी
शान्तचित्त गीता का पाठ करते हुए जंगल
में चले गये तो वहाँपर दो बेरी के वृक्ष अत्य-
न्त सुहावने थे उन्हें देखकरकुछ देर विश्राम
हेतु वहाँ पर एक वृक्षमें तो उन्होंने शिर

लगाया और दूसरे में पैर लगाकर लेट गये और गीताके चतुर्थ अध्याय का पाठ करने लगे अध्याय के पूर्ण होने पर वहा से भरत जी चलने लगे उसी समय एक धनिकपुरुष ने आकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करके बड़ी विनय के साथ कहा हे महात्मन् ! मैं धन जनसे सम्पन्न होता हुआ भी बड़ा दुःखी हूँ कृपाकर आप मेरे दुःख का नाश कीजिये।

भरतजी बोले हे श्रेष्ठिन्! तुम्हें किस बात का दुःख है मुझे स्पष्टरूप से समझाओ। सेठने कहा भगवन्! मेरे दो पुत्र हैं जिनकी अभी आयु छोटी होने पर भी बड़े २ उत्पात करते हैं भरतजी बोले इसमें भी तुम्हारा ही दोषहै। सेठजी सुनकर बड़े चकित हुए और बोले महाराज मैं तो आपकी बात सुनकर बड़े चक्कर में पड़ गया मेरी समझ में नहीं

आया कि मैं कैसे दोषी हूँ। भरतजी ने कहा भाई यह नियम है कि प्रत्येक मनुष्य जन्म केसाथही अच्छा अथवा बुराआचार विचार लेकर नहीं उत्पन्न होता वरन् तुम्हारे हमारे से ही बच्चे सीखकर अच्छे या बुरे बनजाते हैं इसीलिये मैंने तुमसे कहा था कि इसमें तुम्हारा ही दोष है। जिस प्रकार चित्राचित्रन कुम्हार कच्चे घड़े पर कर देताहै वह पककर

अमिट हो जाता है इसी प्रकार बचपन में
पड़े हुए सस्कार बड़े होने पर नष्ट नहीं होते
परन्तु छोटी अवस्था में परिवर्त्तन किया जा
सकता हैं सेठजी बोले आपका कहना सत्य
है परन्तु अब तो मेरा इससे उद्धार कीजिये।
तब भरत जी ने कहा आज से तुम गीताजी
के चतुर्थ अध्याय में कहे पंच यज्ञका अनु-
ष्ठान किया करो तुम्हारे पुत्र तुम्हारे इस

चरित्र को देख स्वयमेव सीधे मार्ग पर चले आयेंगे। तब सेठजी ने कहा इस प्रकार कोई और भी मनोवांछित फल पाया है यह सुन भरतजीने कहा सुनो मैं तुम्हें एक गाथा सुनाता हूँ एक समय एक महात्मा के पास जाकर तुम्हारे सदृश दुःखित हुए एक व्यक्ति ने कहा महात्मन् मेरा पुत्र मीठा खाना नहीं छोड़ना जिसके कारण वर्षाऋतु में इतने

फोड़े उसके शरीर पर निकलते हैं कि मारे दर्द के चैन नहीं लेता कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे वह मीठा खाना छोड़दे महात्मा ने कहा कि पन्द्रह दिन के पश्चात् लड़के को लेकर आना। यह पुरुष महात्मा के कथानुसार पन्द्रह दिन के बाद लड़के को साथ लेकर गया। तब उसे महात्मा ने उस लड़के से कहा, बेटा! तुम मीठा खाना

छोड़दो लड़के ने उस दिन से प्रणकर लिया कि मीठा नहीं खाऊँगा वरन् ऐसा हुआ कि फिर उसने आजन्म मीठा नहीं खाया। तब उस मनुष्य ने महात्मा से कहा महात्मन्! आपने उसी दिन क्यों नहीं मने कर दिया, पन्द्रह दिन बाद क्यों निषेध किया ? तब महात्मा ने उत्तर दिया, उस दिन यदि मैं इसे मने करता तो यह नहीं छोड़ता कारण

कि उस दिन तक मैं भी मीठा खाता था इस
लिये मेरा कुछ भी असर नहीं होता परन्तु
आज पन्द्रह दिन से मैंने स्वयं मीठा खाना
छोड़ दिया इस लिये यह भी मान गया।
इस लिये मैं भी कहता हूँ की यदि तुम इस
चतुर्थ अध्याय अनुकूल आचरण करोगे
तो अवश्य तुम्हारे पुत्र सदाचारी होंगे और
तुम भी साथ अपने कुटुम्ब के परमपद को

प्राप्त होंगे । तब विष्णुजी बोले हे प्रिये ! वह पुरुष चौथे अध्याय के अनुकूल आचार प्रभा से कुटुम्ब वर्ग के साथ परमपद को प्राप्त हुआ ।



अथ पञ्चमोऽध्यायः प्रारम्भ ।



अर्जुन ने कहा कि हे कृष्ण ! आप एक तरफ कहते हैं कि कर्म का त्याग उत्तम है दूसरी ओर आप कहते है कि कर्मयोग करो यह सन्देह युक्त वार्ता कैसी ? मेरे भ्रमको आप शान्त करिये । श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा

कि कर्म का त्याग और कर्म का स्वीकार यह दोनों ही कल्याण दायक हैं परन्तु इन दोनों से बैर रक्खे उसी पुरुष को सन्यासी जानना चाहिये सांख्य और योग दोनों एक ही हैं और दोनों का फल भी एकही है हे महाबाहो ! बिना कर्मयोग के सन्यास की प्राप्ति अति दुःख से होती है और कर्मयोग में लगे हुये मुनि शीघ्र ब्रह्मको मिल जाते

हैं जो योगी लोग अपनी और पराई आत्मा
को एकरूपसे देखने लगते है तो फिर उनको
कर्म बन्धन का भय नहीं रहता है। जो
योगी यह जानता है कि इन्द्रियां जो कुछ
करती हैं वह इन्द्रियां का स्वभाव ही है मैं
इसमें कुछ नहीं करता और जो कुछ किया
कर्म है वह सब ब्रह्म के लिये अर्पण है तो
उसको किसी तरह का पाप नहीं लगता और २५

वह निष्काम कर्म द्वारा मुक्त हो जाता है और जो सकाम कर्म करता है वह तो अवश्य कर्म बन्धन में फँसा रहता है उसकी मुक्ति नहीं होती। संसार को रचने वाला न कर्म करता, न करना प्रत्युत कर्मों के फलों को देने वाला है यह सब स्वभाव के आधीन बर्तते हैं। ईश्वर सर्वव्यापी सामर्थी किसी का पाप पुण्य नहीं लेता है। ज्ञानरूपी अग्नी

अज्ञानरूपी राख से ढँकी रहती है उसीसे समस्त जीव मोह में पड़ रहते हैं जिनको यह भेद मालूम हो गया उनके हृदयमें ज्ञान रूपी सूर्य उदय हो जाता हैं जिनकी बुद्धि आत्मा में लगी है और उसी के शरण में है वेही ज्ञान युक्त पुरुष मुक्ति के स्थान में पहुँचते हैं। जो लोग समदर्शी ज्ञानी पण्डित हैं ब्राह्मण गौ हाथी और कुत्ता के

भोजन करने वाले चाण्डाल को भी बराबर ही देखते हैं जिन पुरुषों का मन समता को प्राप्त होगया मानों उन्होंने समस्त जगतको जीत लिया और वेही सर्वव्यापक पूर्ण ब्रह्म में स्थित रहते हैं। जो सुखके आनेपर प्रसन्न नहीं होते और दुःख के आनेपर घबड़ाते नहीं उन्हीं की बुद्धि स्थिर है और वेही ब्रह्म को प्राप्त होते हैं जिनका मन इन्द्रियों के

स्वाद में नहीं लगता और अन्तरात्मा से पर-
मेश्वर में चित्त लगाये रहते हैं वेही अनन्त
सुखको पातेहैं जो सुखऔर भोगकी कामना
इन्द्रियों के स्पर्श से होती है वह दुःख की
आकार खानि है हे कौन्तेय ! जो पदार्थ
आदि अन्त वाले हैं उनमें बुद्धिमान जन
मनको नहीं लगाते, जो पुरुष शरीर छोड़ने
के पहिले काम और क्रोध के बेगको सहन

कर सकता है वही पुरुष योगी है और वही
सुखी है जिसका अन्तःकरण शुद्धभाव से
युक्त ब्रह्म को उपासक हैं वही ब्रह्मको प्राप्त
होता है जिन पुरुषों के पाप दूर हो गये हैं
और मन वशमें है जो समस्त प्राणीमात्र
में अपने और पराये का भेद नहीं रखने और
जगत के उपकार में चित्तको लगाते हैं वही
ब्रह्मनिर्वाण पद को पाते हैं काम क्रोध से

रहित सन्यासी लोग मनको वश में रखने
वाले और आत्मा के तत्वको भली भाँति
जाननेवाले ब्रह्मनिर्वाणपद को पा जाते हैं।
जो योगी इन्द्रियोंके सुखको मन से हटाकर
नेत्रों की दृष्टि दोनों भौंहों के मध्य स्थिर
करके प्राण अपान वायु को सम करते हैं
और इन्द्रियमन बुद्धिको वशमें करके इच्छा
भय क्रोधको जीत लेते हैं वेही योगी मुक्ती

को प्राप्त होते हैं यज्ञ और तपस्या को अङ्गीकार करने वाला सब लोकों का महाप्रभु, समस्त जगतका मित्र, जो मुझेजानता है वह अवश्य मुक्ति को पाता है ।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः



अथ गीता के पांचवें अध्याय का माहात्म्य

श्री महादेव जी से पार्वती जी बोलीं। हे शंकर जी महाराज! गीता जी के पाँचवें अध्याय का माहात्म्य बड़ा श्रेष्ठ सुना जाता है सो आप कृपाकर मुझे सुनाइये। तबशंकर जी ने पार्वती से कहा कि जिस भाँति मैं यह गीता के पञ्चमोऽध्याय का माहात्म्य वर्णन

करूँगा इसीप्रकारपेश्तर शेषशायीनारायण जी ने लक्ष्मी से कहा था सो इस प्रकार है। श्रीनारायण जी ने लक्ष्मी जी से कहा कि हे प्रिये! अब तुम गीता के पाँचवेंअध्याय का माहात्म्य सुनो । नर्मदा नदी के किनारे महिष्मती नाम नगरी है वहाँ पर माधव नामक एक ब्राह्मण वेद वेदाङ्ग के तत्त्व का जानने वाला अतिथियों का उपकार करने

वाला शुद्ध बुद्धि विद्या ही से बहुत सा धन
इकट्ठा करके भारी यज्ञ का प्रारम्भ करता
हुआ उस यज्ञ में आलम्भन के लिये एक
बकरा लाया उसे स्नान करा के पूजन किया
तो वह बकरा हँसकर बोला कि हे ब्राह्मण!
इन यज्ञों से जो फल होता है वह नाशवान
फल है और कर्ता मोक्ष को नहीं पाता यह
शब्द बकरे का होते ही यज्ञ में बैठे हुए सभी

ब्राह्मण लोग विस्मय को प्राप्त हुए और यज्ञ कर्ता ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोला कि आपकी जाति आत्मा और पूर्वजन्म का वृत्तान्त क्या है और किस कर्म से बकरे की योनि आपको मिली है ? तब वह बकरा बोला कि मैंने ब्राह्मण के निर्मल बंश में उत्पन्न होकर अनेक यज्ञ किये। एक समय हमारी स्त्री ने पुत्र के रोग शान्ति के लिये देवीजी

की भक्ति से बकरा मँगाकर कटाना चाहा तो वहीं पर उस बकरे की माता थी उसने जो देखा कि मेरे पुत्र को यह लोग बलि देना चाहते हैं तो उसने मुझे शाप दिया कि रे पापी ! ब्राह्मणों में अधम ! जो तू मेरे पुत्रको मारना चाहता है तो तू भी बकरे की योनि को पावेगा। उस शाप का हमने ख्याल नहीं किया और उस बकरे का बलि प्रदान

किया। तब काल पाकर मेरी मृत्यु हुई और
अनेक प्रकार की योनियों में भटकता हुआ
अब बकरा हुआ हूँ और पशुकी योनि में
भी मुझे पूर्व जन्म का हाल स्मर्ण है। तब
तो यह हाल सुनकर माधव नामक ब्राह्मण
ने उस बकरे से अन्य योनि में जो वह घूमा
उसका भी हाल पूछा तो बकरे ने अपनी
अन्य योनि का भी हाल कहा कि बकरा

की योनि छोड़कर मैं बन्दर हुआ जो नाचता
रहा बाद कुत्ता हुआ जो घर घर में सदैव
घूमता रहा, एक समय निज स्वामी की
रसोई मैंने खराब कर दी तो ऐसा मारा
गया कि मेरी मृत्यु हो गई और घोड़े का
जन्म मुझे मिला। वहाँ पर अनेक दुःख उठा
कर जो मरा तो फिर भी घोड़ा ही हुआ
मेरा मालिक तीर्थयात्रा के लिये जाने लगा

तो मुझे दूसरे के हाथ बेंच गया, उसने मुझे पेटभर खाने को नहीं दिया। एक दिन जल पिलाने एक तालाब में ले गया तो वहाँ मैं कीचड़ में फँस गया। मेरे मालिक न मेरे निकलने के लिये अनेक यत्न किये परन्तु मैं नहीं निकल सका और मेरी मृत्यु वहीं पर होगई। इस भाँति अनेक प्रकारकी यातना और दुःख भोगकर अब मैं फिर बकरा हुआ

हूँ सो तुम मुझे इस यज्ञमें बलिप्रदान न करो
तो मेरे पूर्व जन्म के सब पाप दूर हो जावें।
मैंने कुरुक्षेत्र में एक राजा को काल पुरुष
दान करते समय गीता के पञ्चम अध्याय
को सुना है उसके प्रभाव से मेरी मुक्ति हो
जावेगी। तब ब्राह्मण ने उस बकरे से पूछा
कि तुम ऐसी घोर योनि में जाकर किस
यत्न से उसको निर्वाह किया ? तब तो २०१

बकरा बोला कि हे ब्राह्मण ! जिस समय से हमने गीता का पञ्चम अध्याय सुना है तभी से उसी का स्मरण करता हूँ, उसीके ध्यान में मग्न रहकर मेरा दुःखमय समय पार हो गया, अब मोक्ष का समय है यह हाल जानकर माधव ब्राह्मण ने भी बकरे से गीता के पञ्चम अध्याय को सुना जब वह बकरा समय पाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ तो वह

विमान में चढ़कर स्वर्ग को गया और वह माधव ब्राह्मण भी गीता के पञ्चम अध्याय का पाठ करता रहा कि जिसके प्रभाव से उस ब्राह्मण की मुक्ति होगई। हे लक्ष्मी ! यह गीताके पञ्चम अध्याय का माहात्म्य हमने तुमसे वर्णन किया कि जिसको सुनकर व पढ़कर सभी जीव मुक्ति को पावेंगे।

इति श्रीपद्मपुराणे सताश्वर सम्वादे उत्तरखण्डे गीतायां पञ्चमोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ ५ ॥

❀ अथ छठवां अध्याय प्रारम्भः ❀



श्रीकृष्णचन्द्र भगवानने कहा कि हे अर्जुन! अग्निहोत्रादि कर्म और कर्म का त्यागी संन्यासी नहीं कहाता। संन्यासी वही है जो कर्म के फल का आसरा छोड़कर कर्तव्य कर्म को करता है, उसीको संन्यास कहते हैं

और उसीको योग जानो बिना सङ्कल्प त्यागे अ० ६
योगी नहीं होता। जिस समय इन्द्रियों के
विषय में और उनके कर्म में प्रीति न होवे
वैसेही कर्म करते हुए किसी पदार्थ के लाभ
की इच्छा न होवे तब उसे जानो कि योग
में इसका चित्त लगा हुआ है। इससे समस्त
प्राणी मात्र को जानना चाहिये कि अपना
ही मन अपना मित्र है और अपनाही मन

अपना शत्रु है। जिसने अपने मनको अपने वश में कर लिया वही मन उसका मित्र है। विना वश किया हुआ मन शत्रु की भाँति घात करता है। इन्द्रियों को वश में करने वाले और बन्धन से मुक्त पुरुषको परमात्मा प्रकाश करके उसके निकट सर्दी गर्मी सुख दुःख मान अपमान ज्ञान विज्ञान से जिसकी आत्मा तृप्त है और विकार से रहित जिते-

न्द्रिय है उसी योगी को योग्य कहते हैं जो कि लोहा पत्थर और सोनेको समान जानता है। जो सदा एकान्त में अकेला बैठकर आत्मा में चित्त लगाये शरीर और सब इन्द्रियों व मनको वशमें करके और कामना को छोड़कर भजन करता है वही योगी परमोत्तम है (अब योगी की साधना बिधि कहते हैं।) सुन्दर पवित्र स्थान में आसन

लगाकर शरीर मन इन्द्रिय को अचल कर
और समान भूमि में कुशा या मृगछाला
को बिछाकर उसपर दृढ़ आसन लगाकर
बैठे और शुद्धचित्त होकर परमात्मा में मन
लगावे। शरीर और मस्तक व गर्दन को
सीधा अचल रखकर नाक के अग्रभाग में
दृष्टि ठहराकर किसी की भी ओर न देखे
और ओ३म् में चित्त लगाये हुये मन को

वश में किये योग साधन करे इस भाँति
योग के साधन करने से योगी परम शांति
२०१ को पाता है बहुत भोजन और थोड़े भोजन
से योग नहीं होता है इस लिये सम भोजन
योगी को उत्तम होता है। जिस समय
चित्त आत्मा में स्थिर हो जावे उसी समय
वह आत्मा में लीन हो जाता है जिस
भाँति बन्द कोठरी में रक्खे दीपक की २०९

ज्योति किसी तरफ को नहीं हिलती है उसी भाँति मन को एकाग्र करके मनको आत्मा में लगाने से मनकी गति रुक जाती है और सुख दुःख को एक समान जानकर मन के संकल्प विकल्प आदि मनोरथों को जड़ से त्याग देवे तब योग करे इसी भाँति के योग साधन करने वाले पुरुष का जहाँ मन स्थिर होगया, रजोगुण और तमोगुण

उसके पास से भाग गये, तभी वह अत्यन्त सुख को पाता है। जिस समय योगी का मन स्थिर होकर सब जगत को अपने में और अपने को सब प्राणियों में देखता हुआ सब जगह समान ब्रह्म को देखता है हे अर्जुन! जो पुरुष अपनी तरह सबके सुख दुःख को बराबर देखता है वह योगी बहुत बड़ा ज्ञानी है। इस योगमार्ग को सुनकर अर्जुन बोले

कि हे मधुसूदन! आपने जो सबको समान जानना रूपयोग कहा है सो मनकी चञ्चलता के कारण यह योगसाधना बहुत ही कठिन है। हे कृष्ण! यह चञ्चल मन शरीर और बुद्धि को घबड़ा देनेवाला अति बलवान है इसका रोकना अत्यन्त कठिन है। जिसका मन वश में नहीं है उसको यह योग बड़ा ही कठिन है। इस कारण

हे कृष्ण ! जिसने योग करना प्रारंभ किया, परन्तु इन्द्रियाँ वश में नहीं हुईं और चञ्चल मन योग से हट गया तो उसकी क्या गति होगी ? और वह क्या बादल के टुकड़े की भाँति नाश हो जाता है, हे महाबाहो ! योगमार्ग से हटा हुआ ब्रह्मज्ञान से रहित वह पुरुष किस गति को पाता है, इस मेरे संशय को आप हटाइये । श्रीकृष्णचन्द्र

भगवान् ने कहा कि हे पार्थ ! उस योगभ्रष्ट पुरुष का इस लोक में और परलोक में नाश नहीं होता, वह पुण्यात्माओं के लोक में जाकर बहुत समय बास करता हुआ सुख भोगकर धनिकों तथा कुलीनों के घरों में अथवा बुद्धिमान पुरुषों की श्रेणी में जन्म पाता है और पूर्व जन्म के संस्कार से फिर वह योगसाधन का उपाय करता

है अगर उसका यत्न ठीक उतर गया तो वह मुक्त हो जाता है। हे अर्जुन ! हमारे मत से तप करने वाले ज्ञानियों तथा कर्म-काण्डियों से योगी उत्तम है इस कारण हे महाबाहो अर्जुन ! आप योगी हो जावें सब योगियों में भी जो श्रद्धाभावयुक्त शुद्ध अंतःकरण से मेरे अनुकूल भजन करते हैं वे सब योगियों से श्रेष्ठ हैं और वेही पूर्ण

योगी हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ गीता के छठवें अध्याय का माहात्म्य।

श्रीभगवान बोले कि हे लक्ष्मी ! अब तुम गीता के छठवें अध्याय के माहात्म्य को ध्यान पूर्वक सुनो। गोदावरी नदी के

किनारे इन्द्रकी पुरी के तुल्य एक प्रतिष्ठान
नामक बड़ा भारी पुर है जहाँ का राजा
ज्ञानश्रुति नामक था। जिस राजा के यहाँ
समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाली
सामग्री सदैव स्थित रहती थी एक दिन
वह ज्ञानश्रुति राजा अपने महल के ऊपर
विराजमान था उसी समय आकाश में
हंसों के झुण्ड के झुण्ड बड़े वेग से उड़ते

हुये दिखाई दिये पीछे वाले झुण्ड के हँसों ने कहा कि किस हेतु इतनी जल्दी उड़ते हो धीरे धीरे चलो तब आगे के हंसों ने कहा तुम नीचे देखो कि कैसा अतिप्रतापवान् राजा ज्ञानश्रुति बैठा है उसका और रैक्य मुनि का यह तेज है। इस वार्ता को सुनकर राजा ने सारथी को बुलाया और आज्ञा दी कि शीघ्र रैक्य मुनि को ढूंढ़कर लाओ सार-

थी आज्ञा पाकर पृथ्वी के समस्त तीर्थों में
घूमता हुआ बद्रिकाश्रम के निकट काश्मीर
देश में रैक्य मुनि को प्राप्त हुआ। तुरन्त
दण्डवत् प्रणाम करके अनेक भाँति से मुनि
जी की स्तुति की और राजा के कहे हुए
सन्देश को कह सुनाया। रैक्य महाराज ने
सारथी को सम्बोधन कर और अनेक भाँति
की वार्तायें सारथी से की। सारथी वहाँ से

लौटकर राजा ज्ञान श्रुति के पास आया और रैक्य मुनि का तेज प्रताप आदि हाल कह सुनाया तब राजा दो घोड़े की गाड़ी सजाये मोतियों के हार रेशमी कपड़े और हजारों गौवों को संग लेकर रैक्य के पास पहुँचा और समस्त सामग्री सामने रखकर पृथ्वी में गिकर दण्डवत् प्रणाम किया। तब मुनिजी राजा के ऊपर क्रोध करके बोले

कि इस अपनी सवारी और मोतियोंके हार
और समस्त सामग्री को उठा ले जाओ। तब
तो राजा बहुत डरा और मुनि जी के चरण
पकड़कर अनेक भाँति स्तुति करता हुआ
बोला कि हे ब्रह्मन्! आपको यह अत्यन्त अ-
द्भुत तेज और माहात्म्य कहां से प्राप्त हुआ
मुझे दया करके सब हाल कहिये ? तब
रैक्य मुनिजी बोले कि हे राजन् ! मैं गीता

के छठवें अध्याय को नित्य पढ़ता हूँ इसी से देवताओं को दुःसह तेजराशि को मैं प्राप्त हूँ और तू गीता के अभ्यास से रहित है तब तो राजा ने मुनि को प्रणाम करके गीताके छठवें अध्यायको जाना और उसका अभ्यास करके मुक्ति को प्राप्त होगया मुनि रैक्य जी गीता के छठवें अध्याय को पाठकर सुख को प्राप्त हुए हे लक्ष्मी! जो गीता के

इस छठवें अध्याय को नित्य पढ़ता है वह निस्सन्देह विष्णुपद को प्राप्त होता है।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे लक्ष्मीश्वर सम्वादे गीतायां षष्ठमोध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम्।

* अथ सप्तमोऽध्यायः प्रारम्भः *

श्रीकृष्णचन्द्र भगवान ने कहा, कि हे पार्थ! मेरा आश्रय करके मेरे आसक्त मन

होकर योग के अभ्यास करने से निस्सन्देह मेरा पूर्ण ज्ञान आपको प्राप्त होगा सो सुनो कि जिसको जानकर फिर संसार में कोई भी वस्तु जानने योग न बच रहेगा जगत में पृथ्वी जल वायु आकाश मन बुद्धि अहंकार यह आठ प्रकार की प्राकृति भिन्न है इसके अतिरिक्त जीवरूप अलग है इन्हीं सब से जगत की उत्पत्ति और नाश होता है है

अर्जुन ! जगत में ऐसा कौन तत्त्व है जो मुझसे परे हो यह सब जगत मुझ में स्थित है । जिस तरह मोती डोरे में परोये होते हैं उसी भाँति मुझमें ये सब परोये हुये हैं । हे कौन्तेय ! जल में स्वाद, चन्द्र सूर्य में प्रभा, वेदों में प्रणव, आकाश में शब्द, मनुष्यों में पुरुषार्थ, मिट्टी में सुगंध, अग्नि में तेज, सब प्राणियों में जीवन और सब

तपस्या करने वालों में तप मैं ही हूँ। हे
पार्थ ! समस्त सृष्टि का बीज मुझको जानो
२२६ बुद्धिमानों में बुद्धि, तेजवाले पदार्थों में तेज,
और प्रकाश मैं हूँ। बलवानों में बल, काम
और राग रहित जो सात्विक बल है तथा
धर्म के अनुकूल जो वासना है वह मैं हूँ।
सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण यह तीनों गुण
मुझसे उत्पन्न हैं और मैं इनके वश में नहीं

हूँ इन्हीं तीनों गुणोंके प्रभाव से यह समस्त जगत मोहित है और सबसे श्रेष्ठ नाशरहित मुझको नहीं जानते हैं। यह मेरी अलौकिक माया है। इसका पार करना अति मुश्किल है। जो पुरुष मेरी शरण में आ जाते हैं वे पुरुष इस मायाजाल से पार होजाते हैं। मायाके प्रभाव से मोहित हुए पापी और मूर्ख लोग मेरी शरण नहीं आते और वे

असुर भावका आसरा करते हैं। हे भरतर्षभ! दुःखी ज्ञानकी इच्छावाले संसारकी कामना वाले और ज्ञानी ये चार प्रकार के मनुष्य मेरा भजन करते हैं इन चारों में ज्ञानी को मैं और मुझको ज्ञानी अति प्रिय है कारण कि अनेक जन्मों के अन्तमें ज्ञानी होकर मुझको पाता है और जिन पुरुषों की बुद्धि मन की कामना से नष्ट होगई है वे

अन्य देवताओं का भजन पूजन किया करते हैं और जिसके भजन पूजन में जिस की मति लग गई उस पुरुष को मैं उसी में श्रद्धा उत्पन्न कर देता हूँ और अन्त में उसे मेरा ही दिया पदार्थ मिलता है परन्तु वे सब पदार्थ नाशवान् होते हैं। हे अर्जुन! मैं सबको प्रत्यक्ष देख नहीं पड़ता। मैं तो योगमाया करके छिपा हूँ। जो लोग होगये

हैं, जो यह वर्तमान हैं और आगे जो लोग होंगे उन सबको मैं जानता हूँ परन्तु वे कोई भी मुझको नहीं जानते। वे तो सदैव सुख दुःख के अनुभव करने में मोहित रहते हैं। जिन पुण्यात्मा पुरुषों के पाप नाश होगये हैं वे द्वन्द और मोह से छूट करके दृढ़ व्रत के साथ मेरा भजन करते हैं। अधिभूत अधिदैव और अधियज्ञ के साथ मुझे जानते

हैं वे लोग सम्पूर्ण मेरी अध्यात्म्य विद्या को जान जाते हैं और उन्हें अन्त में मोक्ष मिलता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषदसु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ज्ञान-
विज्ञान योगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ गीता के सातवें अध्याय का माहात्म्य।

श्रीभगवान् बोले कि हे लक्ष्मी! अब तुमसे गीता के सातवें अध्याय का माहा-

त्म्य वर्णन करते हैं सो ध्यानपूर्वक सुनो।
हे प्रिये! पाटलिपुत्र [पटना] नामक शहर
मे शंकुकर्ण नामक ब्राह्मण रहता था। उस
ब्राह्मण ने ब्रह्मकर्म को छोड़कर वाणिज्य
कर्म करके बहुत धन इकट्ठा किया और
अपना चौथा विवाह किया अकस्मात् एक
दिन लड़के और भाइयों को संग लेकर
रात्रि के समय कहीं बाहर गया मार्ग में

उस शंकुकर्ण ब्राह्मण की भुजा के नीचे साँप ने काट लिया और उसकी मृत्यु हो गई। तब उसके लड़के और भाइयों ने उसे नीम की पत्ती से लपेटकर बाँधा उसी जगह नीम का एक वृक्ष था उसी पर उस मुर्दे को रखकर घर चले आये। कुछ समय के बाद वह ब्राह्मण पूर्व जन्म की वासना के कारण सर्प हुआ उसी के हाथ का गाड़ा गुप्त धन था

वहाँ पर जाकर रहने लगा दैवात् एक दिन उसने सर्प योनि से घबड़ा कर अपने पुत्रों को स्वप्न दिखाया कि मैं तुम्हारा पिता सर्प योनि में पड़ा हूँ मेरा उद्धार करो। मेरे पास बहुत धन है मेरे उद्धार के बाद तुम लोग ले लेना। सबेरा होतेही उस ब्राह्मण के तीनों पुत्रों में से बड़ा पिता के उद्धार करने का विचार करने लगा। दूसरा साँप को मारकर

धन ले लेना, विचारने लगा, तीसरा पुत्र विचार करने लगा कि मेरे पिता ने ऐसा क्या खराब काम किया कि जिससे सर्पयोनि उन्हें मिली है। यह विचार होता ही रहा कि मध्यम पुत्रने अपनी स्त्री से सलाह करके कुदार हाथ में लेकर और भाइयों से बहाना करके जहाँपर उसका पिता सर्परूप में रहता था उसकी बाँबीको खोदने लगा और उसकी

स्त्री मिट्टी निकालने लगी। तब तो उस बाँबी में से कालरूपी सर्प फुफकार मारता हुआ निकला और बोला कि अरे दुष्ट! तू कौन है और इस स्थान को क्यों खोदता है तब ब्राह्मण का लड़का बोला कि मैं आप का शिव नामक पुत्र हूँ। रात्रि में मुझे स्वप्न हुआ था सो धन के लालच से इसे खोद रहा हूँ। पुत्र का यह वचन सुन सर्प बोला

कि ठीक है मेरी जो अवस्था हो रही है इससे
मैं तुम्हें शिक्षा देता हूँ कि तुम स्वर्णादि धन
के लालच में न पड़ो क्योंकि इसीके कारण
मैं इस बन्धन में पड़ा हूँ। उससे मुक्त होने
का उपाय यह है कि श्रद्धापूर्वक वेदविद्या में
निपुण ब्राह्मण जो कि गीता के सातवें अ-
ध्याय का महत्त्व जानता हो उसे बुलाकर
गीता के सातवें अध्याय का नित्य अनुष्ठान

कराया करो। उस अध्यायके उपदेशानुकूल आचरण करने से इस भयंकर दुःख में कभी न फँसोगे और कोई उपाय इस दुःख से छूट-ने का नहीं है पिता की इस आज्ञा को सुनकर पुत्र शीघ्र घर लौट आया और अपने भाइ-यों से यह हाल कहकर पिता की आज्ञा से अधिक सब लड़कों ने किया। तब वे गीताके सातवें अध्याय को सुनकर आनेवाले दुःख

से बचकर परम सुख को प्राप्त हुए। हे लक्ष्मी यह गीता के सातवें अध्यायका माहात्म्य हमने वर्णन किया कि जिसके पढ़ने व सुनने से मनुष्य को उत्तम गति मिलती है।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे लक्ष्मीश्वर सम्वादे गीतायां सप्तमोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम्।



अथ गीतायां अष्टमोऽध्यायः प्रारम्भः।



अर्जुन न कहा कि हे पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है? कर्म क्या है ? अधिभूत क्या है ? अधिदैव क्या कहता है? इस शरीर में अधियज्ञ कौन है? मन को वशमें करने वाले लोग मरण समय में आपको कैसे

जान सकते हैं ? सो आप वर्णन करिये । अ० ८

अर्जुन के प्रश्नों को सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि हे पार्थ ! सबसे उत्कृष्ट नाश-रहित परम ब्रह्म है । प्रत्येक वस्तु का जो स्वभाव है वही अध्यात्म कहलाता है और भूत-मात्र की (समस्त चराचर) उत्पत्ति और विसर्ग (नाश) है वह कर्म कहाता है। २४१

अधिभूत प्राणियों का नाशवान स्वभाव

कहलाता है शरीर में पुरुष ही अधिदैवत
है इस शरीर में अधियज्ञ मैं हूँ जो अन्त
मरण समय मेरा भजन करते हुए प्राणों
को त्यागता है वह मेरे भाव को प्राप्त होता
है अन्त मरण समय जिस जिस पदार्थ में
मन लगाकर प्राणी शरीर को त्यागता है
वह उसी उसी पदार्थ को प्राप्त होता है।
इस कारण हर समय मेरा स्मरण करते हुए

युद्ध को करो जो मेरे में मन और बुद्धि को
लगाये रहोगे तो तुम मुझे निसन्देह प्राप्त
कर लोगे। यती लोग शरीर के दशों द्वारों
को भली भाँति रोक करके मनको हृदय में
और ब्रह्मांड में प्राण को स्थापन करके
योगावस्था में स्थित हो जो प्रणव का स्मरण
करते हुए शरीर को छोड़ते हैं वे परम गति
को प्राप्त होते हैं और मैं उन्हें प्राप्त हो जाता

हूँ। हे अर्जुन! ब्रह्मलोक समेत जितने लोक हैं सबमें पहुँच कर भी फिर जन्म लेना होता है और मुझे पाकर उसका फिर जन्म नहीं होता। ब्रह्मा के दिन में तो सब जगत उत्पन्न हुआ करता है और रात्रि में लय को प्राप्त हो जाता है। हे अर्जुन! परम पुरुष की (परम ब्रह्म) अनन्य भक्ति लाभ के योग्य है कि जिसके भीतर यह सब जगत

भरा हुआ है। हे भरतर्षभ ! छः महीना उत्तरायण सूर्य में और शुक्लपक्ष में जो देवताओं का दिन है उसमें जो देह त्याग करते हैं वे ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को अवश्य प्राप्त हो जाते हैं और छः महीना दक्षिणायन और कृष्णपक्ष में देह त्यागने से स्वर्ग जाकर भी फिर लौट आते हैं। अनेक प्रकार के
यत्न और फल वेदादि में वर्णन किये गये ४५

हैं वे सभी इस योग के जानने वाले को
प्राप्त होते हैं अर्थात् वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
प्रणवाक्षरब्रह्मयोगोनाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गीता के अष्टम अध्याय का माहात्म्य।

एक दिन महादेवजी बोले, हे पार्वति।

आज मैं तुम्हें गीता के आठवें अध्याय का माहात्म्य सुनाता हूँ सो तुम ध्यान देकर सुनो। इस अध्याय के प्रभाव से अनेकों का जीवनोद्धार हुआ और जो इसपर आचरण करेगा उसका भी अवश्यमेव कल्याण होगा मैं तुम्हें एक भुतपूर्व कथा सुनाता हूँ। एक दिन एक संन्यासी किसी ग्राम में पहुँचे दिन का मध्याह्न काल था संन्यासी ने भिक्षा

हेतु एक गृहस्थ की शरण ली, घर में प्रवेश करने पर देखा गृहस्वामी बड़ा दुःखी है, गृहस्वामी कि जिसका नाम देव मित्र था दण्डवत करने के अनन्तर बोला, स्वामिन् ! आपने मुझ अभागे दुखित आत्मा को बड़ी शान्ति प्रदान की, दण्डी ने आशीर्वाद देते हुए पूछा तुम इतने दुःखित क्यों हो ? देव मित्र ने कहा मेरे सम्पूर्ण घर के

प्राणी स्वर्ग सिधार गये है, अब मेरा
मन इतना चञ्चल हो गया है कि किसी
कार्य में भी नहीं लगता सो कृपा करके
इसका कोई उपाय बताने की कृपा कीजिये।
तब दण्डी ने कहा कि तुम इस मनको शांत
करने के लिये दुनियाँ के झंझटों से अलग
होकर किसी वन प्रदेश में जाकर अभ्यास
तथा वैराग्य द्वारा इस मन को शान्त कर

सकते हो, यदि इसका पूर्ण स्वरूप समझना चाहते हो तो गीता के आठवें अध्याय का मनन करो निश्चय ही उसके अनुसार आचरण करने से तुम परमानन्द को प्राप्त हो सकते हो, देवमित्र गीता के आठवें अध्याय का माहात्म्य सुनकर संन्यासी जी से आठवें अध्याय के गूढ़ महत्त्व को भली प्रकार समझ कर उसके अनुसार व्यवहार

करने लगा जिसके प्रभाव से वह परमपद को प्राप्त हुआ।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे सतीश्वर सम्वादे गीतायां
अष्टमोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम्।

अथ नवम अध्याय प्रारम्भः।

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा कि यह गूढ़ से

गूढ़ भेद ज्ञान विज्ञान समेत तुमसे कहता
हूँ जिसको जानकर प्राणीमात्र जन्म मरण
के बन्धन से छूट जाते हैं उसको तुम जानो
जो कि समस्त विद्याओं का अधिपति और
सब भेदों का प्रकाश करने वाला अत्यन्त
पवित्र जिसका फल प्रत्यक्ष है और धर्म रूप
अविनाशी और सुख पूर्वक करने के योग्य
है। हे परंतप! [काम क्रोध राग द्वेष

अभिमानादिक शत्रुओं के नाश करने वाले] इस धर्म में बिना श्रद्धा धारण किये हुए पुरुष मुझको बिना प्राप्त किये मृत्युरूपी संसार में जो जन्म मरण का घर है इसमें भटका करते हैं मन ही अव्यक्त मूर्त्ति से यह सम्पूर्ण जगत जाल रचा है यह समस्त जगत मुझमें है और मैं उसमें नहीं रह सकता हूँ। मेरे योग के ऐश्वर्यको

देखो यह सब सृष्टि मुझमें नहीं रहती और
मैं सबको उत्पन्न करता हूँ। ज्ञान मात्र से
धारण करता हूँ परन्तु मेरा मन उनमें बँधा
नहीं है जैसे आकाश में रहने वाली वायु
सदैव समस्त संसार में सर्वत्र भरी है उसी
तरह सब जगत मुझमें रहता है इसको तुम
भलीभाँति जानो। हे कौन्तेय ! ब्रह्मा के
सन्ध्या समय में सब जगत् मेरी माया में

लय हो जाता है और ब्रह्मा के दिनके आदि
में मैं उन सबको उत्पन्न करता हूँ। माया
और जो पदार्थ हैं माया सब में है जीवा-
दिक सब अपने वशमें प्रारब्धाधीन हैं और
परमेश्वर सदा निराला है जैसे जगत् के
पहिले लिप्त नहीं था वैसेही जगत् के नाश
में भी निराला है। हे अर्जुन ! माया को
अङ्गीकार करके सम्पूर्ण जगतको जो अपनी

अपनी प्रारब्ध के वश में है उसको माया की शक्ति द्वारा बारम्बार उत्पन्न होना पड़ता है। यहाँ पर श्रीकृष्णचन्द्र ने यह सिद्ध किया कि जो चौथे अध्याय में कहा कि हम तुम और यह सब राजा लोग क्या पहिले नहीं रहे और क्या फिर न होंगे सिद्धान्त यह है कि सब जगत माया के आधीन है और माया परमेश्वर के आधीन

है । हे धनंजय ! वे कर्म मुझको बन्धन के कारण नहीं होते मैं तो उन कर्मों में उदासीन की भाँति रहता हूँ और रहते हुए भी मेरा मन उन कर्मों में आसक्त नहीं है। अभिप्राय यह कि ममता से सब लोगों का बन्धन होता है और मैं उस माया के कर्मों में वो माया में रहते हुए भी ममता नहीं करता हूँ इसी वास्ते मेरा उनमें बन्धन नहीं

होता है। शास्त्र पढ़कर जो उनके अनुकूल कर्म नहीं करते और बिना प्रयोजन वाद-विवाद में लगे रहते हैं उनकी विद्या भी सार्थक नहीं है वे लोग असुरों का स्वभाव अर्थात् दुःख देना, भोग की इच्छा और अहंकारी स्वभाव जो बुद्धि नाश करने वाला है उसी के आसरे पर रहते हैं, हे अर्जुन! उनको निरा मूर्ख जानो। हे पार्थ! मैं ऋतु

मैं यज्ञ, मैं श्राद्ध, मैं औषध और मैं ही मंत्र, अ० ९
मैं ही घी, मैं ही अग्नि और मैं ही होम करने
के पदार्थ हूँ। और जो उत्तमगतिरूप सबका
पालन करने वाला दयाका समुद्र सबका
साक्षी सभीके सुखका स्थानसमस्त जगतके
शरण की जगह सच्चा मित्र सम्पूर्ण चर- २०९
चर का उत्पन्न करने वाला नाश करने
वाला बास की जगह और मुक्तिरूप जगत

का बीज अविनाशी है। उसको छोड़कर यज्ञवेत्ता देवताओं की गति चाहने वाले यज्ञ द्वारा स्वर्ग की प्रार्थना करते हैं और उन यज्ञों के पुण्य प्रभाव से इन्द्रलोक में जाय देवताओं के साथ स्वर्ग के सुख को भोगते हैं परन्तु जिस समय उनका पुण्य क्षीण होता है तो विशाल स्वर्गलोक के भोग और सुखों को भोगकर मृत्युलोक में

आप जन्म लेते हैं और उन लोगों का आवागमन बना रहता है। देवतों के पूजने वाले देवताओं के मध्य पहुँचते हैं, पितरों की श्रद्धा वाले पितरों में मिलते हैं. भूतों के उपासक भूतों में और मेरी भक्ति करने वाले मुझे प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! नाशवान सुख की इच्छा छोड़कर और इस अनित्य जगत की अभिलाषा को छोड़कर

मेरा भजन करो मुझमें मन लगाओ मेरी भक्ति करो, मेरे ही हित यज्ञ करो, मुझको ही प्रणाम करो, मेरे ही मन में लगाकर अपने चित्त को मेरे ही साथ एकता करके मेरे ही समान बन जाओगे ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु कृष्णार्जुनसम्वादे राजविद्या राजगुह्यनाम योगवर्णनं नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ गीता के नवम अध्याय का माहात्म्य।



एक दिन पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा हे पतिदेव! ज्ञान बड़ा है अथवा कर्म? तब महादेव जी ने कहा हे प्रिये! न केवल ज्ञान को ही प्रधानता है और न कर्म को ही, क्योंकि देखो यदि कोई मनुष्य किसी

रोग की सुन्दर से सुन्दर औषधि जानता हो और केवल जानकर चाहे कि रोग नष्ट हो जाये तो रोग नष्ट होना असम्भव है। इस लिये रोग निवृत्ति के हेतु औषध के खाने-रूप कर्म को भी अवश्य करना पड़ेगा। बिना ज्ञान के कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिये पृथक् २ किसी को भी प्रधानता नहीं, वेद में इसका स्वरूप और भी उत्तम

दर्शाया गया है [विद्याञ्चाऽविद्याञ्च यस्त-द्वेदो भयं॰सह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया मृतमश्नुते] अविद्या अर्थात् कर्म काण्ड से मृत्यु को तरकर विद्या अर्थात् ज्ञानकाण्ड से अमृत को प्राप्त होता है। जैसे नौका के बनाने तथा चलाने का ज्ञान-कार पुरुष इस ज्ञान द्वारा नौका को बनाकर उसके द्वारा समुद्र को तरकर पार उतरता

है, उसी प्रकार ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाला पुरुष इस संसार को तरकर मोक्षपद को प्राप्त होता है। जिस प्रकार केवल नौका के बनाने तथा चलाने के ज्ञानवाला बिना नौका बनाये तथा दाण्ड लगाये नहीं तर सकता और न बिना जाने इस वस्तु को बना चला सकता है। इस प्रकार अनेक दृष्टान्तों से यही बात सिद्ध होती है कि

ज्ञान और कर्म दोनों साथ मिलकर ही फल उत्पन्न करते हैं। इस नवम अध्याय के ऐसे माहात्म्य को जानकर जो मनुष्य इसके अनुकूल आचरण करता है वह परम पद को प्राप्त होता है।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे सतीश्वर सम्वादे गीतायां नवमोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम्।

अथ गीता का दशम अध्याय प्रारम्भः।



श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अर्जुन से कहा कि हे महावाहो ! जो तुम हमारी बातों को सुनकर अति प्रसन्न होते हो इस लिये मैं तुमसे अपने परम वचन को कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो। बुद्धि आत्मज्ञान चैतन्यता

क्षमा सत्य बोलना सम सुख दुःख जन्म
मरण भय अभय अहिंसा सन्तोष तपस्या
यश अपयश यह बातें सभी जीवों को होती
हैं परन्तु उन बातों में जिन मनुष्यों की
बुद्धि भ्रमित नहीं होती और सुख दुःखको
एक समान जानते हैं उन्हीं की बुद्धि उत्तम
है। हे अर्जुन! मुझसे अलग सात मरीचि
१ अत्रि २ अंगिरा ३ पुलह ४ क्रतु ५

अचेता ६ कश्यप ७ महर्षि और उनसे
पहिले चार सनक १ सनन्दन २ सनातन
 ३ सनत्कुमार ४ यह चार मुनि हैं और
स्वयंभु १ स्वरोचिष २ उत्तम ३ रैवत ४
चाक्षुष ५ वैवस्वत ६ सावर्णी ७ दक्षसावर्णी
८ धर्मसावर्णी ९ रुद्रसावर्णी १० ब्रह्म-
सावर्णी ११ देवसावर्णी १२ सावर्णी १३
तामस १४ यह मनु मेरे मन के संकल्प से

उत्पन्न हुये हैं कि जिनसे चौदहलोक देव
असुर मनुष्य पशु पक्षी आदि सभी उत्पन्न
हुये हैं जो मेरी इस पुनीत विभूति और
योगको अचल जानता है वही मेरे अचल
ज्ञान को निस्सन्देह पाता है। हे अर्जुन !
अदिति के पुत्रों में मैं विष्णु हूँ ज्योतिष्मानों
[प्रकाशमान] के मध्य किरणधारी सूर्य
समस्त वायु के मध्य मरीचि मैं हूँ और

नक्षत्रों में चन्द्रमा मैं ही हूँ वेदों में सामवेद
देवताओं में इन्द्र इन्द्रियों में मन सब
प्राणियों में चेतना शक्ति मैं ही हूँ। रुद्रों में
शङ्कर नाम रुद्र यक्षराक्षसों में कुबेर आठों
वसुओं में अग्नि पर्वतों में सुमेरु मैं हूँ।
पुरोहितों में बृहस्पति सेनापतियों में स्कन्ध
सरोवरों में समुद्र मैं हूँ। ऋषियों में भृगु
शब्दों में प्रणव सब यज्ञों में जय यज्ञ

पर्वतों में हिमालय मैं हूँ। सब वृक्षों में पीपल
वृक्ष देवर्षियों में नारद गन्धर्वों में चित्ररथ
सिद्धों में कपिल मुनि मैं हूँ। घोड़ों में उच्चै-
श्रवा हाथियों में ऐरावत और मनुष्यों में
नरपति हथियारों में वज्र गौओं में कामधेनु
वंश बढ़ाने वालों में कामदेव सर्पों में
वासुकी नाग मैं ही हूँ। नागों में शेषनाग
जल के जीवों में वरुण पितरों में आर्यमा

दण्ड देनेवालों में यमराज मैं हूँ। दैत्यों में
प्रह्लाद गिनती करनेवालोंमें काल (समय)
पशुओं में सिंह पक्षियों में गरुड़ मैं हूं।
तेज चलनेवालों में वायु शूरवीरों में श्री-
रामचन्द्रजी मछलियों में मगर नदियों में
गंगा मैं हूँ। समस्त विद्याओं में वेदान्त विद्या
वादविवाद में सिद्धान्तरूप मैं ही हूँ। अक्षरों
में अकार समास के पदों में द्वन्द्व समास

नाश न होने वालों में काल मैं हूँ! कर्मों का फलदाता ईश्वर मैं हूँ। सब ओर मुख मेरा है। सब संसारको मैं ही देखता हूँ। सबके हरनेवाली मौत मैं ही हूँ! होनहार पदार्थों में यश और लक्ष्मी सरस्वती बुद्धि धारणा-शक्ति सहनशीलता मैं हूँ। सामवेद की ऋचाओं में वृहत् साम छन्दों में गायत्री छन्द बारह महीनों में अगहन ऋतुओं में

वसन्त मैं हूँ। सतोगुणी पुरुषों में सतोगुण मैं हूँ। यदुवंशियों में वासुदेव पाण्डवों में अर्जुन मुनियों में व्यास कवीश्वरों में शुक्राचार्य दण्ड देनेवालों में शासन जय की इच्छा करनेवालों में नीति मन के भेदों में चुप (शान्त) ज्ञानियों में आत्मज्ञान मैं हूँ। जो संसार की मूल वस्तु है सो हे अर्जुन! मैं ही हूँ। इस चराचर जगत में जो पदार्थ

मेरे बिना है वह तो पदार्थ ही नहीं है।
हे अर्जुन! मेरी दिव्य विभूति का अन्त
नहीं है यह तो मैंने तुमसे अपनी विभूति
सूक्ष्म में कही है जो जो राजसी लक्ष्मी
सम्पत्ति सब प्रकार की शोभा है वह सब
मेरेही तेज के अंश से उत्पन्न होकर प्रका-
शित है। हे अर्जुन! इतनी सभी विभतियाँ
मेरे अंगों में विराजमान हैं जो कि मेरे एक

एक अंश से प्रकाशित हैं।

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णार्जुन सम्वादे विभूतियोगवर्णनं दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ गीताके दशवें अध्याय का माहात्म्य।

श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे ईशान ! हे विरूपाक्ष ! अब आप मुझ पर कृपा करके

गीता के दशवें अध्याय का माहात्म्य
कहिये ? तब श्रीमहादेवजी ने कहा कि हे
पार्वति ! इस गीता के दशवें अध्याय के
माहात्म्य की अनेक कथायें हैं उन कथाओं
में से मैं एक का वर्णन करता हूँ सो सुनो !
काशीपुरी में एक ब्राह्मण शान्त चित्त हिंसा
रहित साहसी जितेन्द्रिय रहता था कि
जिस पर मैं अत्यन्त प्रसन्न था। और वह

प्रतिदिन आचमन करके नाक के अग्र भाग में दृष्टि को लगाये परमानन्द के भजन में मग्न रहता। था एक दिन हमारा गण भृङ्गी ऋषि हमारे चरणों को नमस्कार कर के हमसे पूछने लगा कि हे प्रभो ! इस विधि से किसने आत्मदर्शन किये हैं इस महात्मा ने तपस्या हवन अथवा क्या जप किया है कि जिसको आप अवलम्बन देते हैं यहाँ

से यह किसहेतु नहीं जाता यह वृत्तान्तआप
से जानने की इच्छा करता हूँ। इसी भाँति
भृङ्गी ऋषि के वचन सुनकर श्रीमहादेवजी
ने कहा कि हे भृङ्गी ऋषि किसी समय
पुन्नागों के वन के समीप कैलास में हम
रहते थे वह वन अत्यन्त रमणीक था। वहीं
पर क्षणमात्र हम स्थित हुये थे कि वायु
बड़े वेग से चली और काली काली छाया

मुझे दीख पड़ी और महा घोर शब्द हुआ साथ ही एक पक्षी आकाश से उतरता दीख पड़ा जो कि महाकाला अन्धकार के तुल्य पंख कटे हुये पक्षी की नाईं पृथ्वी पर आकर मुझको नमस्कार कर और कुछ कमल मेरे चरणों में रखकर मेरा अनेक भाँतिसे स्तुति करने लगा। जब उसने अनेक प्रकार से स्तुति की और मैंने पक्षी कृतस्तोत्र

को सुना तब तो मैंने उससे पूछा कि हे पक्षी !
तुम कौन और कहाँके रहनेवाले हो तुम्हारी
देह तो हंस के समान और रंग कौवे के तुल्य
है, किस प्रयोजन से यहाँ पर आये हो सो
सब कहो ? इस प्रकार जब मैंने उससे
पूछा तब वह पक्षी बोला कि हे धूर्जटे ! मैं
ब्रह्माजी का हंस हूँ एक समय मानसरोवर
से मैं पृथ्वी पर आया तो बड़े सङ्कट में पड़ा

वह यह कि सौराष्ट्र देश में एक तालाब
में कमल फूल रहे थे, मैं उस तालाब से
कमलनाल को उखाड़ कर तेजीसे आकाश
को जाने लगा अकस्मात् मैं पृथ्वी में गिर
पड़ा और मुझे मूर्छा आगई, देह काँपने
लगी। कुछ देर बाद जब मुझे चेत हुआ
तो मेरी देह काली पड़ गई थी, उसे देखकर
बड़ाही आश्चर्य जान मैं विचार करने लगा

कि इसका क्या कारण है। उसी तालाब के
कमलों में से शब्द मुझे सुनाई दिया कि
हे हंस ! सचेत हो तुम्हारे गिरने और काले
हो जाने का जो कारण है सो सुनो। तब
मैं उठकर उस तालाब के निकट आया तो
मुझे आकाश से शब्द सुन पड़ा कि यह तेरे
चौर्यकर्म का फल है ! अस्तु, तू जब मनुष्य
जन्म प्राप्त कर गीता के दसवें अध्याय के

अनुकूल कर्म करेगा तब सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त होगा।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे सतीश्वर सम्वादे गीतायाः दशमोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ १० ॥

❀ अथ एकादशोऽध्यायः प्रारम्भः ❀

श्रीकृष्णचन्द्रजी से इस अध्यात्म योग

को सुनकर अर्जुन ने कहा कि हे कृष्ण अ. ११
आपसे इस अध्यात्म योग को सुनकर जो
मेरा भ्रम था वह दूर होगया हेकमलपत्राक्ष!
समस्त जगत की उत्पत्ति और विनाश
विस्तारपूर्वक मैंने आपसे सुना परन्तु जैसी
अपनी विभूति आपने वर्णन किया कि
सब में हम और सब हम में स्थित हैं, सो
मुझ पर दया करके वह रूप दिखाइये कि २८३

जो समस्त जगत् आपमें विराजमान हैं हे पुरुषोत्तम ! योगियों के भी ईश्वर आप, जो मुझे उस अविनाशी पुरुष के देखने योग्य समझते हों तो उस विश्वरूप को मुझे दिखाइये । यह प्रार्थना अर्जुन की सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि हे पार्थ ! सैकड़ों और हजारों भाँति के मेरे स्वरूपों को देखो जो चित्र विचित्र अनेक रंगों से

प्रकाशमान हैं। हे भारत! बारहों आदित्य
आठों वसु ग्यारहों रुद्र दोनों अश्विनीकुमार
उन्चासों वायु इन सबको मुझमें देखो कि
जिस आश्चर्य को कभी आपने न देखा
होगा। हे गुडाकेश अर्जुन! इसी जगह मेरि
देह में जङ्गम स्थावर सम्पूर्ण जगत को और
जो कुछ देखने की इच्छा करते हो वह भी
अभी देखलो परन्तु तुम इन नेत्रों से उस

विश्वरूप को नहीं देख सकते इस कारण मैं तुमको दिव्य दृष्टि देता हूँ उससे मेरे योग और ऐश्वर्य को देखो। श्री सञ्जय ने धृतराष्ट्र
२० से कहा कि हे राजन् ! इस भाँति योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन के प्रति कहकर परम ऐश्वर्यवान् विराटरूप को दिखलाया कि जिस रूप का वर्णन किसी भी देवादि से किया जाना कठिन है कि जिसमें अनेक

मुख अनेक नेत्र अनेक बाहु कि जिनमें
अनेक चमकते हथियार उठाये हुये मारने अ.११.
के लिये उद्यत यदि किसी समय हजारों
सूर्य एक साथ उदय होवें तो भी शायद ही
वैसा प्रकाश होवे या न होवे इस भाँति
देदीप्यमान विराटरूप श्रीकृष्णचन्द्र भग-
वान का प्रकाशित हुआ कि जिनके शरीर
में सभी देवतागण अपनी अपनी मण्डली ३१

के साथ उस दिव्यमान स्वरूप में स्थित हैं
ऐसी आश्चर्यमयी मूर्ति को देखकर जो
बड़ी व्याकुलता में भरे हुये थे उन्हें अर्जुन
ने शिर झुकाकर नमस्कार किया और हाथ
जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभु !
आपके दिव्यरूप में समस्त देवताओं को
कार्य करते हुये देख रहा हूँ। जगत के
पितामह ब्रह्मा जो कमलासन पर स्थित

समस्त ऋषिगण और समस्त तेजधारी
सर्पगण भी स्थित हैं। हे विभो ! इस समय
तो आपका यह दिव्यरूप कि जिसमें किरीट
धारण किये गदा और चक्र हाथों में लिये
तेज के पुंज चारों ओर प्रकाशमान हैं अति
कठिन दिखाई दे रहे हैं कि जिस रूप में ज-
लती हुई अग्नि और अनन्त सूर्य का प्रकाश
हो रहा है कि जिसका देखना नेत्रोंसे तो होही

नहीं सकता परन्तु मन और बुद्धि भी देखने और अनुमान करने में असमर्थ है, इसी भाँति सब दिशाओं में व्याप्त आपको देख रहा हूँ। आप नाशरहित सबसे महान् जानने के योग्य हैं और आपही इस समस्त धर्म की रक्षा करनेवाले और अविनाशी पुरुषोत्तम मेरी मति में हैं। हे कृष्ण! ये सब धृतराष्ट्र के पुत्र सब सेनाओं सहित

ये राजा लोग और भीष्मपितामह द्रोणा-
चार्य कर्णादि योधा लोग आपके मुखों में
बड़ी तेजी से धँसे चले जाते हैं जैसे नदियों
का बहुत बढ़ा हुआ जल समुद्र ही की ओर
तेजी से जाता है उसी भाँति ये सब जगत
के वीर लोग आपके ज्वालामय मुख में
घुसे चले जारहे हैं। जैसे भड़कती हुई अग्नि
में पतंगे अपने नाश के लिये आपही चले

जाते हैं वैसेही ये सब मनुष्य अपने मरने के लिये आपके मुख में आपही घुसे चले जा रहे हैं। हे विष्णु! आप अपने अग्नि रूपी मुखसे सबको चटनी की भाँति स्वाद लेते हुये निगल जात हो। आपके तेज से सब जगत भर गया है और बड़े कठोर तेज से भस्म करते हो। अब आप मुझको यह बताइये कि आप भयानक रूप कौन हैं

हे देवताओं में श्रेष्ठ ! आपको अनेक प्रकार अ. ११
से नमस्कार है। अब आप प्रसन्न होइये।
आपको जानने की मेरी बड़ी इच्छा है।
अर्जुन की ऐसी स्तुति सुनकर श्रीनारायण
भगवान ने कहा कि मैं कालरूप हूँ भूभार
हरण करने में लगा हूँ। मैंने समस्त जगत के
नाश हेतु निश्चय किया है तुम्हारों को छोड़ २६७
कर इस सेना में जितने योधागण एकत्र

हुये हैं वे एक भी न बचें इस हेतु तुम अपनी कायरता को छोड़कर इन सबसे निर्भय हो कर युद्ध करो। यश और राज्य लक्ष्मी का भोग विलास करो। संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि इस भाँति भगवान के वचन सुन कर कांपते हुये दोनों हाथ जोड़कर उस विराटरूपको नमस्कार करके भय से बड़ा डरते हुए अर्जुन ने कहा कि हे हृषीकेश!

आपको मित्र मान के जो ढिठाई मैंने आप
से की है। हे कृष्ण ! हे यादव ! आपकी
महिमा बिना जाने उन्मत्ततासे अथवा प्रीति
से या हँसी में जो कुछ आपका अनादर
चलते फिरते सोते बैठते खाते पीते एकान्त
में या लोगोंके सामने किया हो उसको आप
क्षमा कीजिये। कारण कि आपका महत्व
और परम शक्ति मेरे परिमाण से बाहर है।

आप मेरे सभी अपराधों को क्षमा करिये जैसे पिता पुत्र का, मित्र मित्र का अपराध क्षमा करता है उसी नातेसे आप मेरे अपराध क्षमा करने योग्य हो। इस भाँति के रूप को जो मैंने कभी नहीं देखा था उसे देखकर मेरा हृदय अत्यन्त प्रसन्न है और महा भयसे मेरा मन व्याकुल हो रहा है। हे देव! आप मुझ पर प्रसन्न

होकर आपका जो प्रथम रूप था वही
मुझे दिखाइये। इस भाँति अर्जुन की अ. ११
स्तुति सुनकर श्री भगवान् ने कहा कि हे
अर्जुन ! मैंने तुमपर बड़ी कृपा करके अप-
नी योगमाया से उत्तम ज्योतिमय विश्व-
रूप आदि अन्त से रहित तुमको दिखाया
कि जिसको तुमसे पहिले किसी दूसरे
पुरुष को नहीं दिखाया। संजय ने धृतराष्ट्र

से कहा कि हे राजन् ! भगवान ने अर्जुन के प्रति ऐसा कहकर अर्जुन के देखते ही देखते अपना रूप धारण करके अपनी मधुर मूर्ति फिर कर लिया। तब अर्जुन ने कहा कि हे जनार्दन! आपकी यह सुन्दर मानुषी मूर्ति को देखकर मेरा मन प्रसन्न होगया है। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि हे जनार्दन ! इस मेरे रूप का जिसका

दर्शन बहुत क्लेश के योग्य है उसको तुम ने देखा। इस रूपदर्शन की देवता भी इच्छा किया करते हैं। यह रूप किसी भी यत्न से नहीं दिखाई देता। इसके देखने का मुख्य साधन मेरी अनन्य भक्ति ही है जिसके द्वारा इस रूप को मनुष्य देख सकता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्बादे विश्वरूपदर्शन नाम एकादशोऽध्यायः समाप्तः॥११॥

अथ ग्यारहवें अध्याय का माहात्म्य।



एक दिन एकान्त में पाकर श्रीपार्वती ने महादेव जी से पूछा हे धूर्जटे ! मुझे इस बातकी शंका उत्पन्न हुई है कि अर्जुन को श्रीकृष्णचन्द्र जी ने विराटरूप जिस-का वर्णन गीता के ग्यारहवें अध्याय में किया गया है कैसे दिखाया ? महादेवजी

ने कहा हे प्रिये! यह योगी की सामर्थ्य है
जो पुरुष "यम, नियम, आसन प्राणायाम,
प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि" इन
आठों योग के अंगों का उचित रूप से पालन
करता है वह सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त होकर
सम्पूर्ण प्राकृतिक दृश्यों को एक २ कर दिखा
सकता है। परन्तु जो लोग इन सिद्धियों के
फेर में पड़ जाते हैं वे योग-भ्रष्ट होकर नीचे

गिर जाते हैं और जो इनके भ्रमजाल में नहीं फँसते वे इस लोक को तर कर परम पद को प्राप्त होते हैं। ये सिद्धियें केवल अबोध शिष्य को प्रलोभन देकर कर्म करने में प्रवृत्त कराने का उपाय अवश्य है। इसी लिये श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अर्जुन को भी जिसका मन युद्ध करने से हट गया था उसमें प्रवृत्त कराने के लिये उसी उपाय का सहारा

लिया था । जो पुरुष गीता के ग्यारहवें अ.११
अध्याय की सिद्धि को प्राप्त करना चाहे
वह यम नियमादि योग के आठो अंगोंका
अनुष्ठान करे उसे अवश्य वह बल प्राप्त
हो जायगा । हे पार्वती ! अर्जुन का मन
वैराग्य से उस दृश्य को देखकर ऐसा फिरा
कि वह युद्ध करने को तैयार होगया और
युद्ध में विजय को प्राप्त हुआ; यही इस ३०७

अध्याय का माहात्म्य है ।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखण्डे सतीश्वरसम्वादे गीतायां एकादशोऽध्यास्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥११॥



❀ अथ द्वादशोऽध्यायः प्रारम्भः ❀



अर्जुन ने कहा कि हे भगवन् ! जो सदैव आपकी भक्ति से उपासना करते हैं और

जो नाश रहित परमब्रह्मकी उपासना करते
हैं उन दोनों में से अधिक योग जानने वाला
कौन है? श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उत्तर दिया
कि हे अर्जुन! जो मेरे में मन लगाकर
पूर्ण श्रद्धा से मेरी ही उपासना किया करते
हैं वे मेरे मत में परिपूर्ण योगी हैं। जो नाश-
रहित इन्द्रियादिकसे भी जानने के अयोग्य
निराकार सर्वव्यापक की उपासना करते हैं

और इन्द्रियों के वेग को भलीभाँति रोक
कर एक समान सबको जानने वाले सबका
भला चाहने वाले हैं वे मुझको अवश्य
पाते हैं। हे अर्जुन ! जिनका चित्त निरा-
कार की उपासना में लगा रहता है उनको
बड़ा क्लेश मिलता है कारण कि देहधारियों
को निराकारके जानने में अति दुःख उठाना
पड़ता है। जो सब कर्मों को मेरे अर्पण

करके मेरे ही में मन लगाये अनन्य योग
से मेरा ध्यान करते हैं हे पार्थ ! जिनका
मन मेरे ही में लगा है उनको अनेक तरंगों
से युक्त संसार सागररूपी घोर समुद्र से शीघ्र
पार कर देता हूँ। हे धनञ्जय ! यदि चञ्चल
मन को मेरे में लगाने से असमर्थ हो तो
अभ्यास योग से मेरे मिलने की इच्छा करो
और जो अभ्यास योग भी न कर सको तो

मेरे ही भजन स्मरणादिक में लगे रहो और
जो कुछ कर्म करो वह मेरेही हित करो तो
भी मुक्ति को पा जाओगे । जो यह भी
तुमसे न हो सके तो मेरी शरण में आकर
मेरा ही सहारा लेकर सब कर्म फल को
छोड़कर क्रम से इन्द्रियों को वश में करो।
निश्चय करके अभ्यास योग से ज्ञानयोग
अच्छा है और ज्ञानयोग से ध्यान योग

उत्तम है ध्यान योग से कर्म के फल का
त्याग अच्छा है क्योंकि कर्म फल के त्याग
से सदा शान्ति प्राप्त होती है। सबसे प्रेम
रखने वाला दयालु अहंकार और ममता
रहित सुख और दुःखको समान समझता
हुआ क्षमाशील सन्तोषी योगाभ्यासी मन
और इन्द्रियों को वश में रखने वाला, दृढ़ २
निश्चय वाला और जिस पुरुष से लोगों

को किसी भाँति का भय न होवे और संसार के जो भय हैं उनसे जिसका मन उद्विग्न न होवे तथा सदैव हर्ष शोक भय के समय जिसका मन भ्रमित न होवे वह भक्त मुझे प्यारा है। किसी पदार्थ की इच्छा न रखने वाला पवित्र चतुर क्रियावान उदासीन सर्वदा सुखी सर्व कर्म त्यागी जो मेरा भक्त है सो मुझे प्यारा है। जो हर्ष नहीं करता,

क्रोध नहीं करता, शोच नहीं करता, इच्छा
नहीं करता, शुभाशुभ कर्म फल त्यागी मेरा
भक्त है सो मुझे प्यारा है। जिसको शत्रु
१९ और मित्र एक समान हैं मान और अपमान
तुल्य है, शान्ति प्रिय पूर्ण सन्तोषी और
वासना रहित है। हे अर्जुन ! पूर्वोक्त कहे
हुये धर्मामृत का जो लोग श्रद्धा के साथ ३१
सत्परायण होकर सेवन करते हैं, वे भक्त

मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे भक्तीयोगवर्णन नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ बारहवें अध्याय का माहात्म्य।

श्री महादेव ने कहा कि हे पार्वती! दक्षिण दिशा में एक कोल्हापुर नामक

नगर था जिसकी शोभा और बनावट अति
रमणीक इन्द्र की पुरी के समान विख्यात
थी जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों देवरूप थे
वहीं पर अनेक देवी और देवताओं के अनेक
सुशोभित स्थान थे ऐसे उत्तम नगर में एक
राजकुमार युवावस्थाको प्राप्त सुडौल और
सुन्दर था उसने एक दिन एक महात्मा
से पूछा कि हे महात्मन्! गीता के बारहवें

अध्याय में श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अर्जुन को बार बार कहा कि हे अर्जुन ! तुम मेरी भक्ति करो मेरा ही ध्यान करो इसका क्या अर्थ है ? कृपा करके मुझे समझाइये । यह सुनकर उस महात्मा ने कहा इसमें सन्देह नहीं कि बड़े बड़े भी इसके महत्व को समझने में असमर्थ हैं। अस्तु तुम्हारी जिज्ञासा निवृत्ति करना मेरा कर्त्तव्य है। अतः सुनो

श्रीकृष्णचन्द्रजी के कथन का तात्पर्य यह
है कि जिस प्रकार गुरु शिष्य को उपदेश
देता है कि तुम ऐसा परिश्रम करो कि मेरे
सदृश हो जाओ जैसा कि मैं शास्त्रवेत्ता हूँ
उसी प्रकार तुम भी हो जाओ। वही उनका
भी आशय है। लोग इस भ्रम में पड़ जाते
हैं कि वे अपने को ब्रह्म सिद्ध कर रहे हैं,
ऐसा नहीं यह उनकी नितान्त भूल है क्यों

कि उन्होंने स्पष्ट कहा है (बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन । तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वंवेत्थ परन्तप ॥) हे अर्जुन ! मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म व्यतीत हुए हैं परन्तु हे परन्तप। तुम उनको नहीं जानते और मैं जानता हूँ। स्पष्ट कारण यह है कि वे योगी थे इसलिये उन्हों ने कहा कि तुम भी मेरे समान पहले अपने स्वरूप को

समझो और फिर ब्रह्म को जान सकोगे ।
उन्होंने जहाँ जहाँ अपने को मेरा मेरा
करके कहा है उसका आशय जीवका स्वरूप
समझने से है जो ऊपर के श्लोक से स्पष्ट
सिद्ध हो चुका है अतः तुम भी यदि गीता
के इस महत्व को समझकर उसपर आचरण
करोगे तो अवश्य परमपद लाभ करोगे ।

इति श्री पद्मपुराणे उत्तर खण्डे सतीश्वरसम्वादे गीतायां
द्वादशोऽध्यायस्य महात्म्य समाप्तम् ॥ १२ ॥

* अथ त्रयोदशोऽध्यायः प्रारम्भः *



अर्जुन ने कहा कि हे केशव ! प्रकृति और पुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ज्ञान और ज्ञेय के जानने की मेरी इच्छा है सो मुझे कहिये श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि हे कौन्तेय ! इस शरीर को क्षेत्र कहते हैं और इसके तत्व

को जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहाता है। हे
भारत! समस्त क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मुझको
जानों, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को जो जानना है
वही ज्ञान है। अब वह क्षेत्र कैसा है और
कौन से उसमें विकार हैं उनका क्या प्रभाव
है सो मुझसे संक्षेप में सुनो कि जिसको
ऋषिलोगों ने बहुत विस्तार से कहा है और
वेदों में कई प्रकार से अलग अलग कहा

गया है जिसमें आत्मा का निश्चय होवे वह यह है कि पाँचों महाभूत अहंकार पाँच ज्ञान इन्द्रियें पाँच कर्मेन्द्रिय मन पाँच इन्द्रियों के विषय इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञान इन सबसे मिला हुआ यह क्षेत्र कहा गया है। मान और दम्भ से रहित होना किसी को दुःख न देना क्षमा और नम्रता गुरुकी सेवा पवित्रता दुःख के समय

मन को स्थिर करना इन्द्रियों के विषयों से
वैराग्य अहंकार निवृत्ति जन्म लेना मरण
वृद्धावस्था में रोग से पीड़ित होना मन में
खेद इनके दोषों को बारम्बार देखना मन
की आसक्ति स्त्री पुत्र घर और पदार्थों में
न रखना नित्य प्रिय या अप्रिय वस्तु के
मिलने को चित्त में समान जानना मनुष्यों
की संगति में प्रीति न रखकर अनन्य योग

से एकान्त स्थान में बैठकर अध्यात्म ज्ञान का नित्य अभ्यास करना तत्वज्ञान के अर्थ पर ध्यान रखना इसी को हे अर्जुन ! ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान के अतिरिक्त जो ज्ञान है उसको अज्ञान कहते हैं। हे पार्थ ! आपने जो पूछा है कि जानने योग्य कौन है वह कहता हूँ सुनो कि जिसके द्वारा अमृतरूप पदवी मिलती है वह यह है कि आदि अन्त

से रहित परमब्रह्म सत् कहा जाता है।
और जिसके हाथ पैर नेत्र शिर मुख
कान सब स्थान में स्थित है यानी वह पर-
मात्मा सर्व व्यापक है सब इन्द्रियों के गुणों
में प्रकाशित और सब इन्द्रियों से अलग
साथ ही सब पदार्थों में आसक्ति रहित तीनों
गुणों से पृथक् समस्त चराचर जगत की
सृष्टिसे बाहर और भीतर पूर्णरूपसे अत्यन्त

सूक्ष्म सबसे अति दूर और सबके अति निकट सम्पूर्ण जगत में मिला है और अलग की तरह रहता है यही सब जगत का पालनहार उत्पत्तिकर्ता नाशकर्ता जो परमब्रह्म परमात्मा है उसी को जानना चाहिये। उसी परमब्रह्म परमात्मा को जान कर मेरे भक्त मेरे भाव को पहुँचते हैं। हे अर्जुन! प्रकृति (माया) पुरुष (ईश्वर)

इन दोनों को अनादि जानो विकार और गुण सब प्रकृति से ही उत्पन्न हुए हैं। कोई आत्मा को ध्यान में देखते हैं कोई अपने ही में आप को देखते हैं कोई सांख्य और योग में देखते हैं कोई कर्मयोग से देखते हैं कोई ध्यानमार्ग से देखते हैं। हे भरतर्षभ! जितने जीव अथवा वस्तु स्थावर और जङ्गम उत्पन्न होते हैं वे सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के

सम्बन्ध से उत्पन्न हुये हैं। वह परम पुरुष कहाता है। जीवात्मा [पुरुष] प्राकृतिक [माया रचित] शरीर में रहकर कर्म करने वाले कर्मों के फलरूप सुख दुःख को भोगता है और उन्हीं के अनुरूप उत्तम या अधम शरीर को पाता है। जो परमेश्वर जन्म नहीं लेता और सब जगत में समान विराजमान है और सब संसार के नाश होने

पर भी जो उसको अविनाशी देखता है उसीकी दृष्टि उत्तम है और उसीका देखना मानो देखना है। ईश्वर को जो सब देश सब काल सब वस्तु में समान निश्चयपूर्वक विराजमान देखते हुये अपनी आत्मा की हिंसा नहीं करता वह मरने पर मुक्ति को पाता है। जितनी यह चराचर सृष्टि है उसको आत्मा में ठहरा हुआ सम्पूर्ण सृष्टि को

विस्तार देखता है वह ब्रह्म को पाता है जैसे आकाश सब जगह व्यापक है और सूक्ष्म होने से किसी पदार्थ में लिप्त नहीं होता वैसेही वह आत्मा सब में रहकर भी उनके गुण दोषों को ग्रहण नहीं करता। जैसे एक सूर्य सम्पूर्ण जगत को प्रकाश करता है वैसे ही हे भारत ! यह आत्मा समस्त शरीर धारियों को प्रकाशित करता है। इस भाँति

जो ज्ञानवान पुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों का भेद प्रकृति [माया] पुरुष [ईश्वर] को जानते हैं वे मुक्ति को प्राप्त होते हैं ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



अथ गीता के तेरहवें अध्याय का माहात्म्य।



एक समय श्री महादेवजी को एकान्त में पाकर पार्वती जी ने पूछा पतिदेव! आज मुझे गीता के तेरहवें अध्याय का माहात्म्य सुनाइये; सती के इस बचन को सुनकर उमापति ने कहा, हे देवी! एक समय एक

अतिकामी पुरुष एक वेश्या के चक्कर में पड़ा हुआ था एक दिन रात्रि के समय उसे काम ने सताया वह उसी समय वेश्या के घर जाने के लिये बाहर निकला उस समय घोर वर्षा हो रही थी परन्तु तो भी उसने जाना नहीं त्यागा। मार्ग में एक नदी पड़ती थी उसका पुल बाढ़ के कारण टूट गया था यह देखकर उसने तैरकर पार

जाना निश्चय किया। जैसे ही वह तैर कर नदी के मध्य भाग में पहुँचा वैसेही उसके साथ एक मुर्दा टकराया, वह उसे काठ समझ कर उसपर चढ़ बैठा। नदी के पार उतरना चाहता ही था कि किनारे पर उसे एक व्यक्ति दिखाई दिया उस व्यक्ति ने भी बिजली की चमक में देखा कि यह मनुष्य मुर्दे पर से उतरा है। किनारे वाले व्यक्ति ने कहा, तुम

कौन हो जो मुर्देपर से उतरे हो, उस कामी
पुरुष ने कि जिसका नाम दलीप था चकित
होकर कहा मैं तो काठ पर से उतरा हूँ यहाँ
मुर्दा कहाँ ? इतने ही में फिर बिजुली चमकी
उसकी रोशनी में जब उसको बहता हुआ
मुर्दा दिखाया गया तब वह बहुत पछताया
तब उस महात्मा ने कहा-दलीप तुम्हारा
मन कहाँ उलझा हुआ था जो तुम विवेक

शून्य हो गये थे, तब दलीप ने सम्पूर्ण हाल कह सुनाया। यह सुनकर उस महात्मा ने जो बहुत चढ़ा हुआ योगीथा कहा हे दलीप! यदि तुम इस प्रकार मन की गति को रोक कर ईश्वरमें लगाये होते तो अवश्यमोक्षपद पाये होते। यह बात सुनकर उसका मन फिर गया। उसने पूछा मैं उस ईश्वर को कैसे समझ सकता हूँ? तब महात्मा ने कहा यदि

ईश्वर को जानना चाहो तो तुम गीता के तेरहवें अध्याय में कहे हुए पर तन मन धन से आचरण करो तो अवश्य परमपद को पाओगे, हे सति! उसके ऐसा करने पर वह परम पद को प्राप्त हुआ और जो आचरण करेगा वह भी परमपद को प्राप्त होगा।

इति श्री पद्ममहापुराणे उत्तरखण्डे सतीश्वर सम्बादे श्रीगीतायाः त्रयोदशोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ १३ ॥



* अथ चतुर्दशोऽध्यायः प्रारम्भः *



श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि हे अर्जुन ! और फिर वह सर्वोत्तम ज्ञान बतलाता हूँ, जिसे जानकर सब मुनियों ने सिद्धि पाई है इस ज्ञान को पाकर योगी हमारे धर्म के समान होकर फिर न जन्म लेते और न

उनको प्रलय में किसी भाँति का दुख ही
मिलता है। हे कौन्तेय ! सब योनियों में
जो मूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं उन सबकी
योनि महत् ब्रह्म है और मैं बीज देनेवाला
पिता हूँ। सत, रज, तम ये तीनों गुण प्रकृति
से उत्पन्न हुए हैं सो हे महाबाहो ! ये तीनों
देहधारी को बाँधते हैं। हे अनघ अर्जुन !
उन गुणों में सतोगुण निर्मल होने के कारण

सुख और ज्ञान की इच्छा में बाँधता है और
रागात्मक रजोगुण इच्छा और प्रीति का
स्वरूप तृष्णा के ध्यान से उत्पन्न हुआ
जीवात्मा को कर्म की प्रीति में बाँधता है
हे भारत ! अज्ञान से प्रकट हुआ सब शरीर
धारियों को मोहने वाला तमोगुण अपने
उन्माद आलस्य और निद्रा से बाँधता है।
सतोगुण सुख में, रजोगुण कर्म में और

तमोगुण ज्ञानको छिपाकर कर्तव्य की भूल में आसक्ति उत्पन्न करता है। हे भारत ! रजोगुण और तमोगुण की दबाकर सतोगुण बढ़ता है। सतोगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है। सतोगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है। हे अर्जुन ! जिस समय इस शरीर के सब द्वारों में ज्ञान का प्रकाश होता है उस

समय सतोगुण की वृद्धि जानना लालच और लोभ में लगे रहना कार्य के आरम्भ का विचार करना और उसी में रातदिन पड़े रहना जो कार्य न हो सके उसके भी करने की इच्छा करना जब ऐसी पुरुषों में बासना उत्पन्न हुई तो रजोगुण की वृद्धि जानना। हे भरतर्षभ! बुद्धि की मलीनता रुचिका न होना भूलजाना विचार से रहित

होना सदैव भ्रम होना है कुरुनन्दन! यह
गुण तमोगुण से ही होते हैं। जिस समय
सतोगुण की वृद्धि होती है और शरीरधारी
ने देह त्याग किया हो तो वह मरकर उत्तम
पद प्रकाशमान लोक को पहुँचता है। रजो-
गुण की वृद्धि के समय देह छोड़ने पर कर्म
करने वाले मनुष्यों में जन्म लेकर कार्य
के मनोरथ रूप रजोगुण में ही लगा रहता

है वैसे ही तमोगण की वृद्धि के समय मरने पर मूढ़ योनि में जन्म लेकर तमोगुण रूप कार्य किया करता है। सतोगुण के उत्तम कार्य का फल उत्तम है, रजोगुण का फल दुःख और अज्ञान तमोगुण का फल है। सतोगुणी ऊपर के स्वर्गादिलोक को जाते हैं रजोगुणी मध्य मृत्युलोक में हो रहते हैं और तमोगुणी अधम गति को पाते हैं।

देह की उत्पत्ति के कारण इन गुणों से छूटकर तथा जन्म, मृत्यु, और वृद्धावस्था आदि के दुःखों से छूटकर अमृतरूप भोजन करने लगता है। अर्जुन ने कहा कि हे प्रभो! किन लक्षणों से यह ज्ञान होता है कि इन तीनों गुणों से मनुष्य अलग हो गया? ऐसे त्रिगुण तीन का आचार कैसा होता है और कैसे इन तीनों गुणों से परे हुआ जाता है?

श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि हे पाण्डव ! ज्ञान होने से, व्यवहार में लगने से, मोह में पड़ने से जो कुछ सुख दुःख आवे उसमें वह सुखी और दुखी न होवे और जो वस्तु जाता रहे उसकी इच्छा न करे उत्तम मध्य अधम पदार्थ को देखकर चित्त को चलायमान न करे यह तीनों गुण अपना अपना प्रभाव दिखाय रहे हैं ऐसा जानता रहे सुख

दुःख को समान जानकर आत्मा में स्थित
रहे लोहा पत्थर और और सोने को बराबर
जाने मित्र और शत्रु को एक सम देखे
प्रशंसा और निन्दा जिस धैर्यधारी को समान
होवे जिसको आदर और अनादर समान
है वही गुणों को पारकर जाता है हे अर्जुन!
मेरी सच्ची निष्ठा के साथ भक्ति योग से जो
सेवन करता है वह इन गुणों से छूटकर ब्रह्म

लोक को पाता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णा-र्जुन सम्वादे गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ गीताके चौदहवें अध्याय का माहात्म्य

एक दिन श्रीमहादेवजी पार्वतीजी के साथ एक रम्य स्थान में बैठे हुए थे। उसी

अ. १४

समय पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा कि हे पूज्यदेव जी ! ऐसा कौन सा उपाय है जिसके करने से संसारी मनुष्य माया के चक्कर से बचकर मोक्ष पद को पा सकता है। क्योंकि देखने में आता है कि सभी प्राणि इस प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर उसको प्राप्त करने की इतनी चेष्टा करते हैं कि उसका कोई अंश शेष न रह जाय। परन्तु

उनका सभी परिश्रम व्यर्थ जाता है। उनकी आशा पूर्ण नहीं होता जिससे अन्तमें दुःखी होते हैं। महादेवजीनें पार्वती जी का ऐसा प्रश्न सुनकर उत्तर दिया हे देवि ! उनके दुःखी होने का कारण उनकी अज्ञता मात्र है। क्योंकि जो भी सुखी होना चाहे उसका कर्त्तव्य है कि वह अपने बड़े की सेवा करे। यदि वह इसके विपरीत करता है तो

निश्चय दुःखी ही होगा। बराबर वाले की अ.१४
सेवा करने वाला समभाव को प्राप्त होता
है। इसलिये मैं तुम्हें एक दृष्टान्त देकर
समझाता हूँ। एक समय एक आदमी धूप
में खड़ा था। उस समय लगभग दिन का
पहला प्रहर व्यतीत हो रहा था। दूसरा
आदमी उसके समीप ही खड़ा था। उसने
कहा देखो तुम्हारे अगली ओर तुम्हारी ३५३

छाया दिखाई दे रही है। तुम ऐसा प्रयत्न करो कि तुम्हरा चरण तुम्हारे सिर की छाया में लग जाय! उसने ऐसा करने की चेष्टा की परन्तु सब बिफल हुई तब वह लाचार होकर सिर पर पाँव लगाने के लिये दौड़ने लगा। परन्तु फिर भी वह न लग सका। और बोला मैं जितना तेज दौड़ने की चेष्टा करता था छाया मुझसे भी तेज दौड़ती थी।

अ.१४

इसलिये मैं उसे नहीं पकड़ सका। तब उसने कहा अच्छा अब तुम सूर्य्य की ओर मुँह करके दौड़ो। उसने वैसा ही किया तो उसे मालूम हुआ कि छाया मेरे पीछे पीछे दौड़ी चली आती है। तब महादेवजी ने कहा हे प्रिये! तुमने इस बारीकी समझा? यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। जीवात्मा अपने गुणों को न समझ कर गुण में छोटी

प्रकृति की ओर मुख करके जब दौड़ता है तब वह वहाँ कुछ न पाकर असफल होने से दुःखी होता है। जब वह उस पुरुष की भाँति सूर्य्य की अर्थात् परमात्मा की ओर मुख कर लेता है। तब वही प्रकृति उसकी अनुगामिनी हो जाती है। क्योंकि वह अपने से गुणों में बड़े की ओर जाता है। इसलिये उसकी मनोवाँछित तृप्ति हो जाती है।

इसका विशेष स्वरूप जिसको समझना हो वह गीता के चौदहवें अध्याय के महत्व को समझ कर उसपर आचरण करे तो अवश्य परमपद को प्राप्त होगा । उसमें इसी बात का वर्णन किया गया है कि मनुष्य प्रथम अपने स्वरूप को समझे तत्पश्चात् परम ब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को जाने ।

इति श्री पद्ममहापुराणे उत्तरखण्डे सतीश्वर सम्वादे श्रीगीतायाः चतुर्थदशोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ १४ ॥

❀ अथ पञ्चदशोऽध्यायः प्रारम्भः ❀



श्रीभगवान् ने कहा, जिस अश्वत्थ वृक्ष का ऐसा वर्णन करते हैं कि वह ऊपर मूल और नीचे शाखावाला है तथा जो अव्यय अर्थात् कभी नाश न होनेवाला कहा जाता है। छन्द [वेद वाक्य] जिसके पत्ते हैं उस

वृत्त को जो जानता है वही वेदों का जानने
वाला है। गुणों से पुष्ट की हुई इसकी
शाखाएँ जिसमें विषयों के अंकुर फूटनिकले
हैं ऊपर नीचे फैली हुई है, पीछे कर्म के
रूप में प्रगट होनेवाली इसकी जड़ें नीचे
मनुष्यलोक में और भी नीचे तक चली
गई हैं। परन्तु यहाँ इसका वैसा स्वरूप नहीं
दिखाई देता और न इसके आदि अन्त और

आकार का ही पता चलता है, इस अत्यन्त गहरी जड़ वाले अश्वत्थ वृक्ष को अनासक्तिरूपी दृढ़ शस्त्र से काटकर उस पद को ढूंढ़ना चाहिये। जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं पड़ता साथही यह विचारना चाहिये कि जिससे यह पुरातन प्रवृत्ति निकली है उसी आदि पुरुष की मैं शरण में हूँ। जो मान और मोह से रहित हैं जिन्होंने आसक्ति

के दोषों को जीत लिया है, जो नित्य अध्या-
त्मज्ञान में लीन होकर रहते हैं, जिनकी
सब वासनायें और कामनायें मिट गयी हैं
जो सुख दुःख के द्वन्द्व से छूट गये हैं, वे
ज्ञानी लोग उस अक्षय स्थान को प्राप्त होते
हैं। जिसको सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि प्रकाशित
नहीं कर सकते वही परम धाम मेरा है, वहाँ
जाकर लौटना नहीं पड़ता। यह प्राणधारी

जीवात्मा प्रकृति के विषयों में संलग्न मन
सहित इन्द्रियोंको अपनी ओर खींचता है।
जीव जब शरीर प्राप्त करता अथवा त्यागता
है तब वह इन्हें वैसे ही साथ ले जाता है
जैसे वायु पुष्प आदि के गन्ध को अपने
साथ ले जाता है। यह जीव कान आँख
नाक जिह्वा खाल और मन में स्थिर विषयों
का सेवन करता है। देह से बाहर निकल

जानेवाले तथा शरीर में रहने वाले अन्य
गुणों से भोग करने वाले को मूढ़ मनुष्य
नहीं देखते जिनके पास ज्ञान की आँखें हैं
वे ही देखते हैं और यत्न करनेवाले योगी
जन इसे अपने में स्थित देखते हैं परन्तु वे
अज्ञानी लोग जिनकी आत्मा शुद्ध नहीं
है प्रयत्न करके भी इसे नहीं देख पाते सूर्य
का वह तेज जो सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित

कर रहा है तथा जो तेज चन्द्रमा और अग्नि में है उसे मेरा ही समझो। और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश कर अपने तेज से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ और रस से भरा हुआ चन्द्रमा बनकर मैं ही सब औषधियों वनस्पतियों का पोषण करता हूँ। मैंही जठराग्नि के रूप में सब प्राणियों की देह में रहता हुआ प्राण और अपान नामक वायुओं की

सहायता से चारों प्रकारके अन्नों को पचाता
हूँ। मैं सबके हृदय में बैठा हुआ हूँ मुझसे
ही स्मृति, ज्ञान और उनका नाश होता है
सब वेदों में जानने योग्य मैं ही हूँ, बेदान्त
का कर्त्ता और वेदों का ज्ञाता मैं ही हूँ। इस
लोक में क्षर और अक्षर ये दो पुरुष हैं।
सभी नाशवान् प्राणी क्षर हैं और इनकी
जड़ में रहनेवाले को अक्षर कहते हैं। किन्तु

उत्तम पुरुष, जो परमात्मा कहलाता है, कुछ औरही है। वही अव्यय ईश्वर तीनों लोक में रमा हुआ उनका पोषण करता है। चूँकि मैं क्षर से परे और अक्षर से भी उत्तम हूँ इसीलिये मैं लोक और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। हे भारत! जो मोहसे छूटा हुआ व्यक्ति मुझे इस प्रकार पुरुषोत्तम जानता है, वह सब कुछ जान

जाता है और सर्वतोभावेन मुझेही भजता
है। हे पाप से परे! हे भारत! शास्त्र के इस
छिपे हुए भेद को, जिसे मैंने तुमको बत-
लाया है, उसे जानकर बुद्धिमान जन
कृतार्थ हो जाता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषाद्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णा-
र्जुन सम्वादे गुणत्रयविभागयोगोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥१४॥



अथ गीताके पन्द्रहवें अध्याय का माहात्म्य



एक दिन श्री महादेवजी श्रीपार्वतीजी से कहा कि हे मृगलोचने! तुमने गीताके चौदहवें अध्याय का माहात्म्य सुना है सो तुम्हें अब मैं पन्द्रहवें अध्याय का अत्यन्त सुन्दर माहात्म्य सुनाता हूँ सो ध्यान देकर

सुनो एक परम उद्दण्ड वीरसिंह नामक राजा अ १५
हुआ है। उसका मन्त्री अत्यन्त बुद्धिमान
था। एक दिन बड़ी भारी सभा में बैठे हुए
राजा ने मन्त्री से कहा मंत्रिन्! तुम बड़े
बुद्धिमान् मन्त्री हो इसलिये मेरे प्रश्न का
उत्तर तुम दो तो मैं तुम्हें बहुत पुरस्कार
दूँगा और यदि तुम मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं
दोगे तो मैं तुम्हें फाँसी पर लटका दूँगा।

मन्त्री के मन में बड़ा भय उत्पन्न हुआ कि यदि प्रश्न बहुत कठिन हुआ तो निश्चय फाँसी पर लटकना होगा परन्तु करें क्या मानेगा तो है नहीं कहना सुनना सब व्यर्थ ही जायेगा अतः लाचार होकर मन्त्री ने कहा जो आज्ञा महाराज प्रश्न करें। तब राजा ने कहा मंत्रिन्! तुम यह बताओ कि सभी मनुष्य ईश्वर २ पुकारा करते हैं परन्तु

उसको किसी ने देखा भी है कि वह कहाँ रहता है? क्या करता है? या तो उसे दिखाओ और या इस झूठेपन को दूर करके सबको कह दो कि आज से ईश्वर को मानना छोड़ दें। मंत्री ने कहा महाराज आपका प्रश्न बहुत ही कठिन है इसलिये इसका उत्तर देनेके लिये मुझे सालभर का समय चाहिये राजा ने समय स्वीकार कर लिया। एक

दिन मंत्री अपने मकान से निकलकर सड़क पर घूमने के लिये जा रहा था कि उस मार्ग में बारह तेरह वर्ष का एक लड़का सड़क पर बैठा हुआ मिला जो कि सड़क पर बिखरे हुए एक एक चने को उठाकर मुख में रखता जाता था! मंत्री ने लड़के का ऐसा व्यापार देखकर उससे पूछा, बेटा। तुम एक एक दाना क्या खाते हो? पहिले सब बीन लो

फिर बैठकर आराम से खाना। लड़के ने कहा देखने में तो आप बड़े आदमी प्रतीत होते हैं परन्तु बात बड़ी छोटी कहते हैं। क्या आपको अपने जीवन का इतना विश्वास है कि आप चार छः पल और जीते रहेंगे। ऐसा विश्वास होने पर भी आप ऐसा प्रश्न नहीं कर सकते क्योंकि यह काम योगी का है और आपका कहना अत्यन्त बुद्धिहीन है अ.१५

मंत्री ने अपने मनमें विचार किया कि यह लड़का बहुत बुद्धिमान है अतः इससे यदि अपना प्रश्न पूछा जाय तो सम्भव है कि इसका उत्तर दे सकेगा। ऐसा विचार मंत्री ने लड़के से कहा क्या तुम यह बतला सकते हो कि वह ईश्वर कहाँ रहता है कि जिसके नियम में बँधे हुए हम लोग तिल मात्र भी नहीँ हट सकते। क्या उसे तुम दिखा सकते

हो ? लड़के ने कुछ भी बिलम्ब न करते हुए कहा हाँ, परन्तु यह प्रश्न मुझे आपके हृदय से उत्पन्न हुआ नहीं प्रतीत होता। मंत्री ने कहा, यह तुम्हारा कहना सत्य है परन्तु मुझे इसका उत्तर किसी को देना ही पड़ेगा। तब लड़के ने कहा-मैं इस प्रश्न का उत्तर उसी को दूँगा। मुझे उसके पास ले चलो, मंत्री ने कहा वह कोई साधा-

रणा आदमी नहीं है वह राजा है। यदि मैं उसके पास तुम्हें ले चलूँगा और तुम उसे इस प्रश्न का उत्तर दे दोगे तो मेरा अपमान होगा और मुझे इस प्रश्न का उत्तर न देने पर फाँसी की आज्ञा हुई है। तब लड़के ने कहा इन दोनों बातों में से एक बात भी न होगी अर्थात् न तो तुम्हारा अपमान होगा और न फाँसी ही, आप केवल इतना ही कह

देना कि ऐसे छोटे प्रश्न का उत्तर मैं क्या दूँ इसका उत्तर तो यह छोटा सा लड़का भी दे सकता है। मंत्री यह बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसकी सूक्ष्म-बुद्धि की सराहना करता हुआ बोला अच्छा मेरे साथ चलो मंत्री और लड़का दोनों राज-सभा में जा पहुँचे। राजा ने देखते ही मंत्री से पूछा क्या मेरे प्रश्न का उत्तर ले आये?

मंत्री ने उस लड़के को सामने करते हुए कहा महाराज इतने छोटे प्रश्न का उत्तर मैं क्या दूँ जिसका उत्तर यह छोटासा लड़का भी दे सकता है। महाराज ने आश्चर्य के साथ उस लड़के से पूछा क्या तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दे सकते हो ? लड़के ने कहा हाँ महाराज मेरा अपराध क्षमा करें कि आप भी मेरे एक प्रश्न का उत्तर देने की कृपा

करेंगे । महाराज ने कहा हाँ यदि मेरी आधीनता में होगा तो अवश्य दूँगा । तब लड़के ने कहा प्रश्न करने वाला बड़ा होता है अथवा उत्तर देने वाला । और उनका दर्जा क्या है। महाराज थे बुद्धिमान वह इस प्रश्न को सुनकर बड़े लज्जित हुये और बोले प्रश्न करने वाले का दर्जा अवश्य छोटा अर्थात् शिष्य का और उत्तर देने वाले

का बड़ा अर्थात् गुरु का है। तब लड़के ने कहा आप स्वयम् विचारशील हैं बिना अपने स्थान पर पहुँचे प्रश्न का उत्तर कैसे निर्णय हो सकेगा। महाराज ने उसकी तीक्ष्ण बुद्धि देखकर बड़ी प्रतिष्ठा की और उसे गद्दी पर बैठा कर आप नीचे खड़े हो गये। तब महाराज ने कहा अब मैं प्रश्न करूँ! लड़के ने कहा हाँ प्रश्न आप अवश्य

कर सकते हैं। परन्तु मुझे भूख लगी है पहले कुछ दूध का प्रबन्ध कर दें तो अच्छा होगा। महाराज ने उसी समय एक कटोरे में दूध और चीनी मँगाकर दिया। लड़का दूध में चीनी डालकर उँगली से चलाने लगा। इसी प्रकार चलाते२ जब उसे लगभग दस मिनट के व्यतीत हो चुके तब राजा ने कहा तुम ये क्या कर रहे हो ? क्या

अभी तक दूध में मीठा नहीं मिला ! लड़के ने कहा दूध में मीठा तो बहुत देर से मिल चुका है परन्तु मैं इसमें से एक चीज़ ढूढ़ रहा हूँ वह अभीतक हाथ नहीं आयी। राजा ने कहा वह ऐसी कौनसी वस्तु है। लड़के ने कहा-महाराज ! मैं ही नहीं वरन सभी लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि दूध में मक्खन होता है। परन्तु मैं

इतनी देर से उसे खोज रहा हूँ और वह मुझे नहीं मिलता है राजा ने कहा मक्खन भी क्या इस प्रकार निकलता है ? पहिले दूध जमाया जाता है और फिर उसे मथने पर घी निकलता है । हम तो समझते थे कि तुम बड़े बुद्धिमान् हो क्या इसी बुद्धि के भरोसे तुम मेरे प्रश्न का उत्तर देने आये थे ? तब उस लड़के न कहा, इसमें मेरी

भूल नहीं वरन् आपकी है। यह जो आप
ने दृष्टान्त का स्वरूप वर्णन किया है बस
ठीक इसी प्रकार ईश्वर कभी प्रत्यक्ष होता
है। जिस प्रकार मैं बिन मथे दूध में से
मक्खन नहीं निकाल सकता उसी प्रकार
अष्टयोगाङ्गों बिना ईश्वर का दर्शन भी
नहीं हो सकता। जिस प्रकार दूध में सब
जगह मक्खन होते हुए भी दिखाई नहीं

देता, उसी प्रकार ईश्वर सर्वव्यापक होते अ. १
हुए भी दृष्टिगोचर नहीं होता। इसलिये
यदि ईश्वर को देखना चाहो तो अपने दृष्टा-
न्तानुसार उसे प्राप्त करने की चेष्टा करो।
और जो आपने कहा कि वह ईश्वर क्या
करता है उसका उत्तर यह है कि जीवोंको
कर्मानुसार छोटा बड़ा दर्जा देता है उस राजा
ने प्रश्न किया उसके प्राप्त करने का सुगम

उपाय तथा उसका असली स्वरूप हम कैसे समझ सकते हैं? उस लड़के ने कहा, यदि आपको उसका असली स्वरूप जानना है तो आप गीता के पन्द्रहवें अध्याय का मन कर्म वचन से आचरण करें। उसने वैसाही किया और वह परम गति को प्राप्त हुआ। महादेवजी ने कहा हे पार्वति! जो इस अध्याय के यथार्थ स्वरूप को समझ कर

उसपर आचरण करेगा वह अवश्य परम अ. १६
पद् को प्राप्त होगा ।

इति श्री पद्ममहापुराणे उत्तरखण्डे सतीश्वर सम्वादे श्रीगीतायाः
पञ्चदशोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ १५ ॥

* अथ षोडशोऽध्यायः प्रारम्भः *

श्री भगवान् ने कहा, अभय, सात्विक ३८०

शुद्धि, ज्ञान, योगमें अवस्थान, दान, इंद्रिय
दमन, यज्ञ, स्वध्याया, तप, सरलता
अहिंसा; सत्य, क्रोध न करना, त्याग,
शान्ति, दूसरों का छिद्रान्वेषण न करना,
सब प्राणियों पर दया रखना, लालच से
दूर रहना, कोमल स्वभाव, लज्जा, व्यर्थ
चञ्चलता नहीं दिखलाना, तेज, क्षमा,
धृति, पवित्रता, किसी से द्वेष न करना,

घमण्ड न करना, हे भारत! ये दैवी संपद्
में जन्म लेनेवाले पुरुषों के चिह्न हैं। हे
पार्थ! दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठो-
रता और अज्ञान, ये आसुरी सम्पद् में जन्म
लेनेवाले के लक्षण हैं। दैवी सम्पद् मोक्ष
का और आसुरी सम्पद् बन्धन का कारण
मानी गयी है। हे पाण्डव! तुम दैवी सम्पद्
में पैदा हुये हो, इसलिये शोक मत करो।

३९०

हे पार्थ ! इस लोक में दैव और असुर ये दो प्रकार के प्राणी सिरजे गये हैं। दैवी सृष्टि के बारे में तो बहुत कहा जा चुका है, अब आसुरी सृष्टि का हाल सुनो। आसुरी स्व-भाव वाले यह नहीं जानते, कि किसमें प्रवृत्ति होना चाहिये और किससे निवृत्ति। उनमें पवित्रता, आचार और सत्यता नहीं है। ये कहते हैं, कि जगत् असत्य, निराधार

और अनीश्वर है। यह योंही पैदा हुआ है। काम के सिवा इसका दूसरा कारण क्या हो सकता है ? ऐसी दृष्टि का अवलम्बन करनेवाला नष्टात्मा, दुष्टबुद्धि और जगत् के शत्रु उग्र कर्म करते हुए इस (जगत्) के नाश के लिये ही पैदा होते हैं। वे अपवित्र व्रतवाले ऐसी इच्छा रखते हुए जो कभी पूरी न हो, दम्भ, मान और मद से

युक्त हो, मोह के मारे हुए असत कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। वे मरने तक अनन्त चिन्ता में डूबे हुए कामोंपभोग को ही सब कुछ माननेवाले इसीको सर्वस्व ठहरा लेने वाले सैकड़ों तरहकी आशाओं के जाल में फँसे हुए, काम और क्रोध में लिप्त हो, केवल कामोपभोग के लिये अन्याय से धन बटोरना चाहते हैं मैंने आज यह पा लिया

अब के इस मनोरथ को पूरा करूँगा। इतना धन मेरे पास है यह धन भी फिर मेरा ही होगा। इस शत्रु को तो मैंने मार लिया अब औरों को भी मार डालूँगा। मैं ही ईश्वर भोग करनेवाला, सिद्ध, बलवान् और सुखी हूँ। मैं धनी हूँ कुलीन हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान करूँगा, मौज उड़ाऊँगा। इसी तरह के अज्ञान से

जो मोह में पड़े हुए हैं। अनेक प्रकार के भ्रम से जिनके चित्त डँवाडोल हैं जो मोह के फन्दे में फँसे हुए हैं कामोपभोग में लिपटे हुए हैं वे अपवित्र नरक में पड़ते हैं। वे अपने मुँह मियाँमिट्ठू बननेवाले, जड़-मति, धन और मान के मद से चूर, केवल आडम्बर के लिये विधि की परवा किये बिना ही यज्ञ करते हैं। वे अहङ्कार बल दर्प

काम और क्रोध का आश्रय ग्रहण करने वाले, अपनी और परायी देह में टिके हुए मुझसे द्वेष करने वाले निन्दक हैं। उन क्रूरों द्वेषियों और संसार के मनुष्यों में अधर्मी को मैं सदैव अपवित्र आसुरी योनियों में ही ला पटकता हूँ। हे कौन्तेय! ये आसुरी योनि को प्राप्त हुए मूढ़ जन्मजन्मान्तर में मुझे कभी न पाकर अन्त में अत्यन्त अधम

योनि को प्राप्त होते हैं। काम क्रोध और लोभ ये नरक के द्वार हैं जो अपना नाश कर देते हैं। इसलिये इन तीनों को त्याग देना चाहिये। हे कौन्तेय ! अन्धकार में ले जानेवाले इन तीनों द्वारों से छुटकारा पाया हुआ मनुष्य अपने आत्मकल्याण का आचरण करता हुआ अन्त में परम गति को प्राप्त होता है। जो शास्त्र-विधि

को छोड़कर, जोही जीमें आता है वही करता रहता है वह न तो सिद्धि पाता है; न सुख; और न परमगति। इसलिये कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था के लिये तुम्हें शास्त्र को प्रमाण मानना चाहिये और इस प्रकार शास्त्र में लिखे हुए विधान को जानकर तुम्हें कर्म करना उचित है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे गुणत्रयविभागयोगोनाम षष्टदशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ गीताके सोलहवें अध्याय का माहात्म्य



पार्वतीजी ने महादेवजी से कहा पतिदेव! आपने पन्द्रहवें अध्याय का माहात्म्य सुनाया अब मेरी इच्छा गीता के सोलहवें अध्याय के माहात्म्य सुनने की है अतः कृपा कर उसका महत्त्व मुझे समझाइये। तब

महादेवजी ने कहा प्रिये! इस अध्याय का माहात्म्य बड़ा ही सुन्दर है जिसके स्वरूप समझने से मनुष्य संसार में रहता हुआ भी कमल के समान पृथक् रह सकता है कमल का कैसा सुन्दर दृष्टान्त है कि वह कीचड़ और गँदले जल में उत्पन्न होकर भी उनका अपने ऊपर कुछ असर नहीं होने देता मानों कभी उसे जल ने स्पर्श ही

नहीं किया इस प्रकार वह सदा पृथक् और स्वच्छ ही रहता है। इसी प्रकार जो मनुष्य अपने हृदय से मोह का त्याग कर देता है उसको किसी वस्तु की प्राप्ति और त्याग से सुख दुःख नहीं होता जैसे कोई मनुष्य किसी धर्मशाला में ठहरा हुआ होता है। दैवात् किसी प्रकार उसमें अग्नि लग जाय अथवा बिजुली आदि से हानि

होजाय तौ भी उसे किसी प्रकार का दुःख
नहीं होता अथवा किसी पुरुष का कोई
अपना मकान हो और वह उसे बेच डाले
तत्पश्चात् यदि वह नष्ट होजाय तौ उसको
भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। कारण
यही होता है कि वह पुरुष अपनी मोहवृत्ति
को उससे हटा लेता है क्योंकि वह समझ
लेता है, मुझे इसका फल प्राप्त होगया

सम्भवतः यह प्रश्न हो सकता है कि फल प्राप्ति के अनन्तर ही निवृत्ति देखी जाती है ? अन्यथा नहीं। ऐसा विचार भी निर्मूल है क्योंकि दान देने के अनन्तर फल के बिना प्राप्त किये ही निवृत्ति देखने में आती है। अहंकार के वशीभूत मनुष्य अपने आप को ईश्वर कह डालता है। अहंकार बड़े २ पापों का मूल है अहंकार से मूढ़ आत्मा

अपने आपको कर्मों का फल-भोगी बना
लेता है। यदि इस अहंकार को त्याग दें तो
निश्चय कर्मफल त्यागी जीवात्मा मोक्षपद
को प्राप्त हो। इसके सूक्ष्म महत्व को सम-
झने के लिये सोलहवें अध्याय का मनन
करना चाहिये उसका सत्यरूप समझकर
उसपर आचरण करे तो अवश्य परमपद
लाभ कर सकता है। पार्वती जी ने महादेव

जी से कहा क्या कोई ऐसा व्यक्ति भी हुआ है जिन्हें इस अध्याय के प्रभाव से मोक्ष पाया हो, महादेवजी ने कहा हाँ, गुजरात देश में एक खड्गबाहु नामका राजा हुआ है उसके यहाँ एक बड़ा भारी हाथी था वह अकस्मात् मदान्ध होगया और निकल पड़ा समस्त शहर में हाहाकार मच गया राजा खड्गबाहु भी देखने के लिये राज-

महल से बाहर आये और उस हाथी को एक रास्ते में कैदसा कर लिया इतने ही में एक ब्राह्मण स्नान करके गीता के सोलहवें अध्याय का पाठ करते हुये आ निकला लोगों ने उनसे कहा कि इस मार्ग में बिगड़ा हाथी खड़ा है इस रास्ते से न जाइये परन्तु ब्राह्मण हाथी के निकट से निकल गया। इधर राजा ने उसको देखकर बुलवाया

और प्रणाम कर कहा आप किसके प्रभाव
से मदान्ध हाथी से नहीं डरे ब्राह्मण ने कहा
राजन् यह गीता के सोलहवें अध्याय का
प्रभाव है अब तो राजा उन्हें अपने घर ले
आये और उनसे सत्कारपूर्वक उस अध्याय
का महत्त्व समझ कर राज्यसुखको तुच्छ
मान पुत्रको गद्दी पर बैठाकर आप उस
अध्याय के अनुसार आचरण करने लगे।

कुछ काल के बाद परमगति को प्राप्त हुए।

इति श्री पद्ममहापुराणे उत्तरखण्डे स्तीश्वर सम्वादे श्रीगीतायाः षोडशोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ १६ ॥

* अथ सप्तदशोऽध्यायः प्रारम्भः *

अर्जुन ने कहा, हे कृष्ण! जो लोग शास्त्र विधि को छोड़कर श्रद्धायुक्त होकर यज्ञ करते

हैं उनकी निष्ठा कैसी है सात्विकी राजसी या तामसी ? श्रीकृष्ण जी ने कहा, देहधारियों की श्रद्धा स्वभावतः तीन प्रकार की होती है सात्विकी राजसी और तामसी। इस का ठीक ठीक हाल सुनो। हे अर्जुन ! सबकी श्रद्धा अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार होती है पुरुष श्रद्धा से भरा हुआ है ही। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह वैसाही होती है।

सात्विक पुरुष देवताओं की पूजा करते हैं
राजसी पुरुष यक्षो और राक्षसों की तथा
इनके सिवा तामसी पुरुष भूतों और प्रेतों
की पूजा करते हैं। जो लोग शास्त्रमें जिसका
विधान नहीं है, ऐसा उग्र तप करते हैं वे
दम्भ और अहंकार से युक्त काम और राग
के बल से बलवान् बने हुए. मूर्ख न केवल
अपने शरीर के भीतर टिके हुए पञ्चमहा-

भूतों को ही बल्कि मुझे भी कष्ट देते हैं।
उन्हें आसुरी निश्चयवाले ही जानो। सब
का आहार भी रुचि के अनुसार तीन तरह
का होता है। यही हाल यज्ञ तप और दान
का भी है। इनका भेद भी सुन लो। सात्विक
पुरुषों की आयु सात्विक वृत्ति बल आरोग्य
सुख और प्रीतिके बढ़ानेवाले रसीले चिकने
स्थिर और आनन्ददायक भोजन रुचते हैं।

कड़वे खटे नमकीन गरमागरम तीखे रूखे चरपरे तथा दुःख शोक और रोग पैदा करने वाले भोजन ही राजसी पुरुषों को पसन्द हैं। पहरों से रखा हुआ रसहीन दुर्गन्धयुक्त जूँठा और अपवित्र भोजनही तामसी पुरुषों को प्रिय हैं। सात्विक यज्ञ वही है जो फल की इच्छा नहीं रखनवालों के द्वारा विधि

के अनुसार मन को शान्त करके कर्त्तव्य

समझकर किया जाये। हे भरत श्रेष्ठ! राजसी
यज्ञ उसेही जानो जो फल की इच्छा से
या लोक दिखावे के लिये किया जाये। जो
यज्ञ विधिपूर्वक न हो जिसमें अन्नदान न
हो जो विना मन्त्रों और दक्षिणा के श्रद्धा-
शून्य होकर किया जाये वह तामसी कह-
लाता है। देवता ब्राह्मण गुरु और पंडितों
की पूजा पवित्रता सरलता ब्रह्मचर्य और

अहिंसा का आचरण करना कायिक तप कहलाता है। ऐसी बात बोलना जिससे किसी का जी न दुखे, जो सत्य प्रिय और हित करने वाला हो तथा स्वाध्याय का अभ्यास वाचिक तप कहलाता है। मन की प्रसन्नता शान्त चित्तता मौन आत्मनिग्रह और भाव की शुद्धता यह मानसिक तप कहलाता है। इन तीनों प्रकार के तपों को

यदि मनुष्य परम श्रद्धा के साथ फल की आकांक्षा से रहित और योग-युक्त होकर करें तो उन्हें सात्विक कहते हैं। जो तप सत्कार मान और पूजा पाने के लिये या लोक-दिखावे के लिये किया जाये वह राजस कहलाता है। वह चञ्चल और अध्रुव है जो तप अपने को पीड़ा पहुँचा कर दुराग्रह के साथ औरों को दुःख देने के लिये किया

जाता है वही तामस कहलाता है। जो दान दान देना कर्त्तव्य समझ कर लेनेवाले से अपनी भलाई की आशा न रखकर देश काल और पात्र देखकर दिया जाता है वही सात्त्विक है। जो दान उपकार के बदले में किसी फलकी इच्छा से मन में क्लेश मान कर दिया जाता है वह राजस माना गया है। जो दान बुरे दशा में बुरे समय में कु-

पात्र को बिना आदर सत्कार के अवज्ञा के साथ दिया जाता है वही तामस कहलाता है। [शास्त्र में] ब्रह्म का निर्देश ॐ तत्सत् इस प्रकार तीन तरह से किया गया है। इसी के द्वारा प्राचीन काल में ब्राह्मण यज्ञ और वेद बने। इसीलिये ब्रह्मवादियों की यज्ञ दान और तप आदि शास्त्रोक्त क्रियाएँ ॐकार के उच्चारण के साथही होती हैं।

मोक्षार्थी जन तत् शब्द का उच्चारण कर फल की इच्छा नहीं रखते हुए यज्ञ तप और दानादि विविध क्रियाएँ किया करते हैं। हे पार्थ! अस्तित्व और साधु भाव में सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार प्रशंसनीय कार्यों में भी सत् शब्द प्रयुक्त होता है। यज्ञ तप और दान में जो स्थिति अर्थात् निष्ठा है वही सत् कहलाता

है तथा इसके लिये जो कर्म हो वह भी सत् कहलाता है। जो होम दान तप या कर्म बिना श्रद्धा के किया जाता है वह न तो मरने पर ही काम आता है, न यहीं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषद्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-र्जुन सम्वादे गुणत्रयविभागयोगोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥



अथ गीता के सत्रहवें अध्याय का माहात्म्य अ. १७



श्री पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा, पतिदेव ! गीता के सोलहवें अध्याय का माहात्म्य मैंने सुना अब मुझे सत्रहवें अध्याय का माहात्म्य समझाइये । महादेव जी ने कहा, देवि ! काश्मीर देश में वृषभध्वज ४१६

नाम का एक राजा राज्य करता था। उसका एक प्रधान मंत्री बड़ा ही बुद्धिमान् तथा परम आस्तिक था। उसका यह स्वभाव था चाहे राजकार्य बने अथवा बिगड़े वह यही कहा करता था कि 'जो ईश्वर करता है वह अच्छा ही करता है' एक दिन वृषभध्वज महाराज और वही मंत्री दोनों जंगल में आखेटको गये। महाराज को बहुत काल

खोजते खोजते एक चीता दिखाई पड़ा,
उन्होंने उसे मारने के लिये तरकस से एक
सुतीक्ष्ण बाण निकाला और चीते को मारा
चीतेको बाणलगा परन्तु वह विशेष जखमी
नहीं हुआ और वह लौटकर महाराज के
ऊपर झपटा बहुत समीप आजाने के कारण
महाराज ने तलवार से उसे मार डाला।
शीघ्रताके साथ तलवार निकालनेके कारण

महाराज के बायें हाथ की अँगुली कट गयी राजा ने दुखित होकर कहा मंत्रिन्! हमारे हाथ की अँगुली कट गयी है। मन्त्री ने उत्तर दिया महाराज ईश्वर जो करता है वह अच्छा ही करता है। यह सुनकर राजा को क्रोध चढ़ आया और उन्होंने उसी समय मन्त्री से कहा मन्त्री तुम इसी समय मेरे राज्य से चले जाओ तुमको हमारे सुख

दुःख का कुछ भी विचार नहीं है और राजा म.१७
ने कहा, तब मालूम होगा, ईश्वर जो कुछ
करता है अच्छा ही करता है जब ये आनन्द
भोग नहीं मिलेंगे । मन्त्री देश त्याग कर
उसी समय चला गया । कुछ काल के
पश्चात् एक दिन राजा फिर शिकारके लिये
बन में गया । उस दिन उसे एक हिरण
दिखाई दिया और वह उसके पीछे हो लिया

हिरणभी भागते भागते दूसरे देशके जङ्गल में जा निकला। वहाँ दैवयोग से कुछ आद-मियों ने इन्हें हृष्ट पुष्ट देखकर देवी की भेंट चढ़ाने के लिये पकड़ लिया और देवी के मन्दिर में लाकर पुजारी को बुलाया। पुजारी ने आकर महाराज से कहा अब तुम देवीका ध्यान करो तुम्हारी बलि दी जायेगी जो कुछ खाना हो माँगलो। राजा के होश

उड़ गये उन्होंने देखा कि एक आदमी बड़ी तीक्ष्ण तलवार लिये उनकी गरदन काटना चाहता है। पुजारी जिस समय टीका करने लगा उसकी दृष्टि राजा की कटी हुई अंगुली पर जा पड़ी उसी समय पुजारी ने कहा यह बलि चढ़ाने योग्य नहीं है इसकी अंगुली कटी है अंग-भंग बलि नहीं चढ़ाया जाता जब राजा छूटकर बाहर आया तब उसने

ईश्वर को धन्यवाद दिया और कहा मंत्री
जो कहता था तो ठीक ही कहता था ईश्वर
जो करता है अच्छा ही करता है। सो उस
दिन यदि मेरी अंगुली न कट गयी होती
तो आज मेरे प्राण जाते। अस्तु राजा ने
मंत्री को फिर ढुँढ़वा मँगाया। और अपना
सब हाल कह सुनाया। राजा ने कहा मेरे
लिये तो अच्छा हुआ परन्तु तुमने जो इतने

४२६

दिन दुख भोगा, तुम्हारे लिये ईश्वर ने क्या अच्छा किया ? मंत्री ने उत्तर दिया मेरे साथ ईश्वर ने यह अच्छा किया कि यदि मैं आप से पृथक् न होगया होता तो आप के स्थान पर मैं बलि चढ़ा ही दिया जाता क्योंकि मैं साथ होता और मेरा अंग-भंग नहीं था। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ और उसे उसी पद पर फिर नियुक्त कर दिया।

तब राजा ने पूछा कि तुमने ईश्वर की ऐसी अपूर्व शक्ति को कहाँ से जाना। तब मंत्री ने कहा, मैंने इसके थोड़े से महत्त्व को गीता के सत्रहवें अध्याय से जाना है परन्तु जो मनुष्य उसके पूर्णरूप को जान लेता है वह इस संसार को त्यागकर मोक्षपद को अवश्य पाता है। यह सुनकर राजाने एक माहात्म्य से इस अध्याय के तत्व को समझ कर उस

पर आचरण किया और मोक्षको प्राप्त हुआ।

इति श्री पद्ममहापुराणे उत्तरखण्डे सतीश्वर सम्वादे श्रीगीतायाः सप्तदशोऽध्यायस्य माहात्म्यं समाप्तम् ॥ १७ ॥

* अथ अष्टादशोऽध्यायः प्रारम्भः *

अर्जुन ने कहा, हे महाबाहो! हे हृषीकेश! हे केशि-निषूदन ! अब मैं संन्यास और

त्यागका तत्व अलगअलग जानना चाहता
हूँ। श्रीभगवान् ने कहा ज्ञानी जन वासना
जनित कर्मोंके त्यागकोही संन्यास समझते
हैं और पण्डितगण कर्म फल के त्यागको
ही त्याग कहते हैं। कुछ पण्डित दोषयुक्त
समझकर कर्मका त्याग करना उचित बताते
हैं। दूसरे यज्ञ दान और तप के कर्मों को
नहीं छोड़ने को कहते हैं। हे भरतश्रेष्ठ!

अब त्याग के सम्बन्ध में निश्चित बात कौन
सी है वह सुनो। हे पुरुषो में सिंह ! त्याग
भी तीन तरह के बतलाये गये हैं। यज्ञ दान
और तप के कर्म अवश्यही करने योग्य है
छोड़ने योग्य नहीं क्योंकि यज्ञ दान और
तप ज्ञानियों का भी पवित्र करने वाले हैं।
हे पार्थ ! मेरा यह निश्चित और श्रेष्ठ मत
है कि ये सब कर्म आसक्ति और फल की

इच्छा छोड़कर अवश्यही करने चाहिये। नियत कर्मों का त्याग करना उचित नहीं है। यदि मोहवश त्याग किया भी जाये तो वह तामस कहलाता है। इससे कष्ट होता है यह सोचकर या शारीरिक कष्ट के भय से जो राजस त्याग किया जाता है उससे त्यागका फल नहीं मिलता। कर्त्तव्य समझ कर आसक्ति और फल की इच्छा छोड़कर

जो नियत कर्म किया जाता है वही सात्विक
१ त्याग है। जो न तो कष्टदायक कर्म से
द्वेष रखता है न सुखदायक कर्म में आसक्त
होता है वही त्यागी सत्त्व-गुण-विशिष्ट
मेधावी और संशयसे छूटा हुआ है। देहधारी
से एक-बारगी कर्मों का त्याग होना अस-
म्भव है। जिसने कर्म-फल का त्याग कर
२ दिया है वही त्यागी कहलाता है। कर्म के

फल अनिष्ट, इष्ट और मिश्र के भेद से
तीन तरह के होते हैं जो त्यागी नहीं, उन्हें
मरने पर इन्हें भोगना पड़ता है पर संन्या-
सियों को नहीं। हे महाबाहो! सब कर्मों
की सिद्धि के लिये जो पाँच कारण सांख्य-
शास्त्र में बतलाये गये हैं अब उन्हें मुझसे
सुनो। [१] अधिष्ठान (स्थान) [२] कर्त्ता
पृथक्-पृथक् करण [साधन] [४] पृथक्

पृथक् चेष्टाएँ और [५] दैव। शरीर वाणी
और मन से जो काम मनुष्य आरम्भ करता
है वह न्याय्य हो अथवा इसके विपरीत,
पर येही पाँचों उसके कारण होते हैं। ऐसा
होनेपर भी जो असंस्कृत-बुद्धिता के कारण
केवल अपने को ही कर्त्ता मानता है वह मूढ़-
मति कुछ भी नहीं जानता। जिसमें अहं-
कार का भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्लिप्त २५

है, वह इन लोकों को मार कर भी नहीं
मारता और बन्धन में भी नहीं पड़ता।
४३६ ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, येही तीन कर्म की
प्रेरणा करने वाले हैं। करण कर्म और
कर्त्ता ये तीन कर्म संग्रह अर्थात् कर्म के
साधन हैं। गुणसंख्यान अर्थात् सांख्यशास्त्र
में गुणों के भेद से ज्ञान कर्म और कर्त्ता
भी तीन तरह के बतलाये गये हैं। उनका ४३६

भी यथावत वर्णन करता हूँ सुनो। वही ज्ञान सात्विक कहलाता है जिससे पृथक् पृथक् विभक्त भूतों में भी एकही अविभक्त और अव्यय भाव दिखायी देता है। उस ज्ञान को राजस जानना, जिससे पृथकत्व का बोध होता है और सब भूतों में तरह तरह के अव्यय-भाव दिखायी देते हैं। उस अल्प ज्ञानको तामस कहा जाता है जिससे

अकारण और बिना तत्त्वार्थ जाने, एकही कार्य में उसीको सब कुछ समझकर लिपटा रहे। फल की इच्छा न रखने वाला मनुष्य जो नियत संग-रहित और रागद्वेष से हीन कर्म करता है वही सात्विक कर्म है। फल की आशा रखनेवाले अहङ्कारी मनुष्य से जो कर्म बड़े परिश्रम के साथ किया जाता है वही राजस कर्म कहलाता है। जो कर्म

मोह में पड़कर बिना यह सोचे कि नाश होगा या हिंसा होगी अथवा हममें सामर्थ्य है या नहीं किया जाये वही तामस है। जो निःसङ्ग है अहङ्कार से रहित है, धैर्य और उत्साह से भरा हुआ है, सिद्धि और असिद्धि में जिसे विकार नहीं होता, वही सात्विक कर्त्ता है । राजस कर्त्ता वह है जो विषया-नुरागी हो कर्मफल चाहता हो लोभ तथा

हिंसा करनेवाला हो अपवित्र हो तथा हर्ष और शोक से भरा हो। जो चञ्चल-चित्त वाला नीच मूढ़मति शठ दूसरों की बुराई करनेवाला आलसी विषादी और सुस्त हो वही तामस कर्त्ता कहलाता है। गुणों के अनुसार बुद्धि और धृति (धैर्य) के भी तीन भेद हैं। वह मैं तुम्हें अलग अलग विस्तार पूर्वक बतलाता हूँ सुनो। जो बुद्धि प्रवृत्ति

४४०

और निवृत्ति कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य भय अ १८
और अभय तथा बन्धन और मोक्ष को
जानती है वही सात्त्विकी है। जिस बुद्धि
से धर्म और अधर्म तथा कर्त्तव्य और
अकर्त्तव्य का ठीक ठीक पता नहीं चलता
वही राजसी कहलाती है। हे पार्थ ! जो
अन्धकार से घिरी हुई बुद्धि अधर्म को धर्म
तथा सभी बातों के उलटेही अर्थ करता है ४४

वही तामसी कही जाती है। हे पार्थ ! जिस अव्यभिचारिणी धृति से मन प्राण और इन्द्रियों के व्यापार योगयुक्त होकर धारण किये जाते हैं वही सात्विकी धृति है। हे पार्थ! प्रसङ्ग के अनुसार फल की इच्छा रखनेवाला पुरुष जिस धर्म काम तथा अर्थ को धारण करता है उसकी धृति राजसी है. हे पार्थ! जिस धृति से दुर्बुद्धि मनुष्य

निद्रा भय शोक विषाद और मद को नहीं छोड़ता वही तामसी धृति है। अब हे भरत-श्रेष्ठ ? तीन तरह के सुखों का हाल सुनो। निरन्तर अभ्यास करने से मनुष्य जिसमें रम जाता है और जहाँ दुःख का अन्त पा लेता है। जो पहले तो विषसा पर परिणाम में अमृतके तुल्य होताहै वही सुख सात्विकी है और यह आत्म-निष्ठा बुद्धि के प्रसाद

से उत्पन्न होता है। विषयों और इन्द्रियों
के संयोग से जो पहिले अमृतसा परन्तु
परिणाम में विषकासा प्रतीत होनेवाला
सुख है वही राजस कहा जाता है। जो पहले
और पीछे भी मनुष्य को मोह में डाले
रहता है और निद्रा आलस्य तथा प्रमाद
से पैदा होता है वही तामस सुख कहलाता
है। फिर ऐसी कोई वस्तु संसार में आकाश

में या देवलोक के देवताओं में भी नहीं है जो प्रकृति के इन तीनों गुणों से अलग हो। हे परन्तप ! ब्राह्मणों क्षत्रियों वैश्यों और शूद्रों के कर्म भी उनके स्वभावोत्पन्न गुणों के अनुसार अलग अलग बँटे हुए हैं। शम दम तप शौच क्षमा सरलता ज्ञान विज्ञान और आस्तिकता ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं। वीरता तेजस्विता

धीरता दक्षता युद्ध से नहीं भागना दान
देना और प्रजा का शासन तथा पालन
करना ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं।
खेती गौरक्षा बजन व्योपार ये वैश्यों के
स्वाभाविक कर्म हैं और सेवा करना शूद्रों
का स्वाभाविक कर्म है। अपने अपने कर्मों
में रत रहने से ही मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता
है। किस तरह अपने कर्म में रत मनुष्य

सिद्धि प्राप्त करता है सो सुनो। जिससे
भूत-मात्र की प्रवृत्ति हुई है जिसने यह सारा अ. १८
जगत् जाल फैला रखा है अपने कर्म से उस
की अर्चना करने से मनुष्य सिद्धि पाता है।
अपना धर्म गुणहीन होने पर भी दूसरे के
सहज धर्मसे कहीं अच्छा है अपना स्वभाव-
सिद्ध कर्म करते हुए मनुष्य को पाप नहीं
लगता। हे कौन्तेय! दोषपूर्ण होनेपर भी ४७

अपना स्वाभाविक जन्मसिद्ध कर्म नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि जितने भी काम-धन्धे हैं सब दोष से वैसेही घिरे रहते हैं जैसे धुएँ से आग। जिसकी बुद्धि सर्वत्र आसक्ति-हीन है जिसने अपने मनको जीत लिया है जिसकी वासनाएँ मिट गयी हैं वह संन्यास के द्वारा नैष्कर्म्य-सिद्धि [जिसमें कर्म का बन्धन नहीं व्यापता]

प्राप्त करता है। हे कौन्तेय! इस प्रकार जो
मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है वह फिर
किस प्रकार ज्ञानकी सर्वोच्चनिष्ठा अर्थात्
ब्रह्म को प्राप्त करता है वह भी मैं तुमसे
संक्षेप में कहता हूँ, सुनो। विशुद्ध बुद्धि से
युक्त होकर धृति द्वारा मनको वशमें लाकर
शब्द आदि विषयों को त्याग कर राग और
द्वेष को छोड़कर एकान्त का सेवन करने

वाला, न अधिक और न कम आहार करने
वाला बाणी और मन का संयम करने वाला
नित्य ध्यान-योगमें लीन रहने वाला और
वैराग्य का अवलम्बन करनेवाला अहङ्कार
वल, दर्प, काम क्रोध तथा परिग्रह को छोड़
कर ममता-हीन और शान्त बना हुआ
मनुष्य ब्रह्मत्वको प्राप्त करने में समर्थ होता
है। ब्रह्मभूत होनेपर वह प्रसन्न आत्मावाला

न तो सोच करता है न इच्छा। वह भूतमात्र
में एकसी दृष्टि रखता हुआ मेरी श्रेष्ठ भक्ति
लाभ करता है! भक्ति से वह पुरुष तत्त्वतः
मुझे जान जाता है कि मैं कौन हूँ और
कितने में हूँ। इस तरह मुझे तत्वतः जानने
के अनन्तर वह मुझमें प्रवेश करता है। मेरी
शरण ग्रहण किये हुए वह सब कर्म करता
हुआ मेरे प्रसाद से शाश्वत और अव्यय-

पद पा लेता है। मन से सभी कर्मों को मेरे ही अर्पण कर मुझमें लौ लगाये हुए बुद्धि योगका आश्रय लेकर मुझी में चित्त लगाये रहो। मुझमें चित्त लगाने से तुम सब संकटों से बच जाओगे। पर यदि अहंकार वश मेरी बात न सुनोगे तो नाश को प्राप्त हो जाओगे यदि अहंकार से तुम यह ठहराओगे कि मैं नहीं लड़ूँगा तो ऐसा निश्चय व्यर्थ है

क्योंकि स्वयं प्रकृतिही तुम्हें इसमें लगा येगी। हे कौन्तेय ! अपने स्वभाव-सिद्ध कर्म से तुम बँधे हुए हो । यदि मोहवश तुम उसे नहीं करना चाहोगे तौ भी तुम्हें उसे करना ही पड़ेगा । हे अर्जुन ! समस्त भूतमात्र के हृदय में ईश्वर टिका हुआ है और माया से सब प्राणियों को इस तरह घुमा रहा है मानों वे किसी यन्त्र पर चढ़ाये गये हों ।

हे भारत! तुम सर्वतो भावेन उसकी शरण में हो जाओ। उसीकी कृपा से तुम परम शान्ति और शाश्वत (अक्षय) स्थान प्राप्त कर लोगे। इस तरह मैंने तो तुमसे यह गुप्त से गुप्त ज्ञान भी बतला दिया। अब इसको भलीभाँति विचार कर तुम्हारी जैसी इच्छा हो करो। अब तुम सबसे गुप्त और श्रेष्ठ बात सुनो। तुम मेरे बड़े प्यारे हो इसीलिये

४५४